ओ३म्

मनु का विरोध क्यों ?

प्रकाशक

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली

ओ३म्

मनु का विरोध क्यों ?

लेखक

डॉ० सुरेन्द्र कुमार

'मनुस्मृति-भाष्यकार एवं प्रक्षेपानुसन्धानकर्ता'
आचार्य (संस्कृत, व्याकरण, साहित्य, दर्शन)
एम.ए. (संस्कृत, हिन्दी), पी-एच.डी.

प्रकाशक

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली

प्रकाशक
आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट

४५५, खारी बावली, दिल्ली-११०००६

दूरभाष : ३६५३११२, ३६५८३६०

सृष्टि संवत : १,६६,०८,५३,०६६

विक्रम संवत : २०५५

लेखक-
डॉ० सुरेन्द्र कुमार

'मनुस्मृति-भाष्यकार एवं प्रक्षेपानुसन्धानकर्ता'
आचार्य (संस्कृत, व्याकरण, साहित्य, दर्शन)
एम.ए. (संस्कृत, हिन्दी), पी-एच.डी.

प्रथम संस्करण : १०,०००
द्वितीय संस्करण : १०,०००
कुल योग : २०,०००

मुद्रक : **शेरवानी आर्ट प्रिन्टर्स**
१४८०, गली कासिम जान, लाल कुंआ, दिल्ली-११०००६
दूरभाष : ३६५३११२, ३६५८३६०

लेज़र टाईपसैटिंग : **तिलक प्रिटिंग प्रेस**
२०४६, बाजार सीताराम, दिल्ली-११०००६
दूरभाष : ३२३१३६६

प्रकाशक की ओर से

दो शब्द

मनु के अवांछित विरोध के फलस्वरूप २८-७-८९ को राजस्थान उच्च न्यायालय के जयपुर परिसर में स्थापित महर्षि मनु की प्रतिमा को हटाने का प्रस्ताव राजस्थान उच्च-न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा सर्वसम्मति से पारित हो गया । जब यह बात चर्चा में आई तब डा० सुरेन्द्र कुमार जी की प्रेरणा व तैयारी से मैंने एक समादेश याचिका राजस्थान उच्च न्यायालय की जयपुर पीठ के समक्ष प्रस्तुत करके उस आदेश को रद्द करने की प्रार्थना की । उस समादेश याचिका के समर्थन में १४ बातें (तर्क के रूप में) न्यायालय के समक्ष रखी गई थीं । या यूं कहिए कि पूरी समादेश याचिका को १४ बातों पर आधारित करके प्रार्थना की गई थी कि :-

"महर्षि मनु की स्थापित प्रतिमा को निर्धारित स्थान से अन्यत्र न हटाया जाए ।"

वे आधारभूत बातें निम्नलिखित हैं :-

(क) सर्वप्रथम और सर्वोपरि धर्मशास्त्र के प्रणेता महर्षि मनु

(ख) धार्मिक गुरु एवं धर्मप्रवक्ता

(ग) आर्यसमाज का विशिष्ट धर्मग्रन्थ मनुस्मृति

(घ) प्रथम विधि-प्रणेता

(ङ) आधुनिक विद्वानों की दृष्टि में मनु और मनुस्मृति सर्वाधिक प्रामाणिक

(च) सर्वोच्च न्यायालय में मनु की प्रतीक प्रतिमा

(छ) मनु की विदेशों में मान्यता

(ज) मनु मानवसृष्टि के आदि जनक हैं

(झ) मनु की वर्णव्यवस्था का वास्तविक स्वरूप

(ञ) मनु के मत में शूद्र अस्पृश्य नहीं

(ट) मनु की दण्ड व्यवस्था शूद्रविरोधी नहीं

(ठ) वर्ण परिवर्तन के ऐतिहासिक उदाहरण और प्रमाण

(ड) आधुनिक काल में मनु व्यवस्था के अनुसार वर्ण परिवर्तन

(ढ) मनुस्मृति में प्रक्षेप

(ण) मनुस्मृति के प्रक्षेपों पर शोधकार्य

अपनी बात को रखने के लिए न्यायालय के मुझ याचिका कर्त्ता को भी बुलाया। समय कम दिया था अतः मैंने मनु की मूर्ति का प्रतिवाद कर रहे वरिष्ठ अधिवक्ता महोदय से पूछा :-

"मैंने अपनी याचिका में १४ बातों को आधार बनाया है। यदि आप इन १४ बातों में जिन किसी भी तीन बातों को सबसे कमजोर समझते हैं, उन्हें आप बता दें, यही तीन बातें मेरा आधार होंगी। मैं उन्हीं पर बोलूंगा। शेष बातें फिलहाल समयाभाव के कारण छोड़ देते हैं।" बात तो बड़ी अटपटी सी लगी कि कोई व्यक्ति प्रतिपक्षी अधिवक्ता से ही पूछे कि मेरे पक्ष की (चौदह में से) सबसे कमजोर कोई भी तीन बातें बता दें, वही मेरा आधार होंगी। लेकिन प्रतिवादी वरिष्ठ अधिवक्ता न बता सके। उनका उत्तर न आते देखकर मामले की सुनवाई कर रही पूर्णपीठ ने आदेश दिया कि मैं अपने समर्थन में कही गई सभी चौदह आधारभूत बातों का खुलासा करके न्यायालय के समक्ष रखूं। मैंने वही किया। लगभग पूरे ३ दिन का समय लगा। पूर्ण पीठ ने सभी बातें बड़ी ध्यान से सुनीं। उत्तर देने के लिए जब प्रतिवादी वरिष्ठ अधिवक्ता का क्रम आया तो वे अपना पक्ष न रखकर बगलें झांकने लगे। न्यायालय की कार्यवाही का रेकार्ड बताता है :-

"लगभग २० मिनट तक इन्तजार करने के बाद भी मनु का प्रतिवाद कर रहे पक्ष की ओर से जवाब देने का साहस अधिवक्तागण नहीं जुटा पाए।"

अन्त में न्यायालय ने एक अन्तरिम आदेश पारित करके मनु की मूर्ति को न्यायालय परिसर से अन्यत्र स्थानान्तरित करने सम्बन्धित २८-७-८९ के आदेश के क्रियान्वयन पर रोक लगा दी। नतीजतन आज भी महर्षि मनु की प्रतिमा वहीं पर है।

दरअसल जिस प्रकार बिना सोचे समझे एवं अन्य किसी कारण से मनु पर भांति भांति के निराधार आरोप लगाकर उनकी मूर्ति को हटाने का दुष्प्रयास किया गया था वह अत्यन्त निन्दनीय है। महापुरुषों पर किए गए ऐसे राजनीतिक प्रेरित हमलों से सुधी पाठकगण सावधान हो सकें यही इस लघु पुस्तिका का उद्देश्य है। डा॰ सुरेन्द्र कुमार जी ने पूरे प्रकरण पर अत्यन्त जागरूकता से कार्य किया है, अतः वे निस्सन्देह धन्यवाद के पात्र हैं।

धर्मपाल-आर्य

मंत्री, मनु प्रतिष्ठा संघर्ष समिति
एवं
मंत्री, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

१०, अगस्त १९९५

आवश्यक निवेदन

आजकल हवा में एक शब्द उछाल दिया गया है-'मनुवाद', किन्तु इसका अर्थ नहीं बताया गया है। इसका प्रयोग भी उतना ही अस्पष्ट और लचीला है, जितना राजनीतिक शब्दों का। मनुस्मृति के निष्कर्ष के अनुसार मनुवाद का सही अर्थ है-'गुण-कर्म-योग्यता के श्रेष्ठ मूल्यों के महत्त्व पर आधारित विचारधारा', और तब, 'अगुण-अकर्म-अयोग्यता के अश्रेष्ठ मूल्यों पर आधारित विचारधारा' को कहा जायेगा-'गैर मनुवाद'।

अंग्रेज-आलोचकों से लेकर आज तक के मनुविरोधी भारतीय लेखकों ने मनु और मनुस्मृति का जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह एकांगी, विकृत, भयावह और पूर्वाग्रहयुक्त है। उन्होंने सुन्दर पक्ष की सर्वथा उपेक्षा करके असुन्दर पक्ष को ही उजागर किया है। इससे न केवल मनु की छवि को आघात पहुंचता है, अपितु भारतीय धर्म, संस्कृति-सभ्यता, साहित्य, इतिहास, विशेषत: धर्मशास्त्रों का विकृत चित्र प्रस्तुत होता है, उससे देश-विदेश में उनके प्रति भ्रान्त धारणाएं बनती हैं। धर्मशास्त्रों का वृथा अपमान होता है। हमारे गौरव का ह्रास होता है।

इस लेख के उद्देश्य हैं-मनु और मनुस्मृति की वास्तविकता का ज्ञान कराना, सही मूल्यांकन करना, इस सम्बन्धी भ्रान्तियों को दूर करना और सत्य को सत्य स्वीकार करने के लिए सहमत करना। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि जन्मना जाति-व्यवस्था से हमारे समाज और राष्ट्र का ह्रास एवं पतन हुआ है, और भविष्य के लिए भी यह घातक है। किन्तु, इस एक परवर्ती त्रुटि के कारण समस्त गौरवमय अतीत को कलंकित करना और उसे नष्ट-भ्रष्ट करने का कथन करना भी अज्ञता, अदूरदर्शिता, दुर्भावना और दुर्लक्ष्यपूर्ण है। यह आर्य (हिन्दू) धर्म, संस्कृति-सभ्यता और अस्तित्व की जड़ों में कुठाराघात के समान है।

संसार की सभी व्यवस्थाएं शतप्रतिशत खरी और सर्वमान्य नहीं होती। परवर्ती जातिव्यवस्था की तरह आज की व्यवस्था भी पूर्ण नहीं है। यदि कोई त्रुटि आ जाये तो उसका परिमार्जन किया जा सकता है। हमारे पूर्वज ऋषि-मुनियों ने इसके लिए एक उदार मूलमन्त्र बहुत पहले से दे रखा है-

"यानि अस्माकं सुचरितानि, तानि त्वया उपास्यानि, नो इतराणि।"

(तैत्तिरीय उप० १.११.२)

अर्थात्—हमारे जो उत्तम आचरण हैं, उन्हीं का अनुसरण करना, अन्य का नहीं।

इसका पालन करके हम अनुत्तम का परित्याग कर उत्तम को बनाये रख सकते हैं। उत्तम ही सत्य है, शिव है। उसका परित्याग करना मूर्खता है। आशा है, पाठक इसे पढ़कर मनु-सम्बन्धी भ्रान्तियों से बच सकेंगे, और मनुस्मृति के मौलिक मन्तव्यों से अवगत हो सकेंगे तथा उसे ग्रहण करने के लिए उद्यत होंगे।

निवेदक

डॉ. सुरेन्द्रकुमार

मनु का विरोध क्यों ?

अंग्रेजी शासनकाल में अंग्रेजी-शासन के हितों से जुड़े और ईसाईयत में दीक्षित कुछ पाश्चात्य लेखकों ने पहले-पहल, भारतीयों के मन में प्रत्येक उस वस्तु और व्यक्ति के प्रति योजनाबद्ध रूप से विरोधी संस्कार भरने का और उनकी आस्थाभंग करने का षड्यन्त्र किया, जिनका परम्परागत रूप से भारत की अस्मिता, गरिमा और महिमा से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था। इस प्रकार नींव पड़ी भारतीयता-विरोध परम्परा की। अंग्रेजी शासन के प्रभाव, 'फूट डालो और राज करो' की कूट राजनीति और मैकाले द्वारा प्रवर्तित कूट शिक्षानीति के सहारे वे कुछ भारतीयों को अपने रंग में रंगने में सफल हो गये। उन्होंने इस परम्परा को निभाया और आगे बढ़ाया। इसी परम्परा में उभरे कुछ वे लोग और वर्ग जिन्होंने सर्वप्रथम समाजव्यवस्थापक, आदि विधिनिर्माता महर्षि मनु और उनके आदि विधानशास्त्र मनुस्मृति को अपनी निंदात्मक आलोचनाओं का केन्द्र बनाया। आज स्थिति यह है कि अंग्रेजी परम्परा में लिखी आलोचनाओं और सुनी-सुनायी बातों के आधार पर मनु एवं मनुस्मृति का विरोध करना कुछ सामाजिक वर्गों का एक लक्ष्य बन गया है, तो अंग्रेजीदां लोगों की परिपाटी और कुछ राजनीतिक दलों का चुनाव जीतने का मुद्दा। हमारे राजनीतिक लोगों की बात सबसे निराली है। अभी पिछले वर्षों में कुछ लोग पार्टी विभाजन होते ही एक ही रात में 'मनुपुत्र' से 'गैरमनुपुत्र' बन गये और सार्वजनिक मंचों से लगे मनु, मनुस्मृति और मनुपुत्रों को कोसने! एक राजनीतिक दल ने सत्ता प्राप्त करने के लिए 'मनुवाद' जैसे नये मुद्दे का आविष्कार कर डाला! कुछ वर्ष पूर्व जयपुर स्थित उच्च न्यायालय के परिसर में जब आदि विधिप्रणेता होने के कारण मनु की प्रतिमा स्थापित की गयी, तो कुछ लोगों को उस जड़ प्रतिमा से न्याय, न्यायालय और संविधान को एक खतरे का भविष्यदर्शन हुआ और उन्होंने उस प्रतिमा को ही विवाद का विषय बना डाला, जो आज एक प्रकरण के रूप में उसी न्यायालय में विचाराधीन है। जबकि वास्तविकता यह थी कि प्रतिमा-विरोध को कुछ लोग अपनी राजनीतिक पहचान बनाने का सुअवसर समझकर उसका अधिकाधिक लाभ उठाने की ताक में थे।

आश्चर्य तो तब होता है जब हम ऐसे लोगों को मनुस्मृति का विरोध करते हुए पाते हैं, जिन्होंने मनुस्मृति के पढ़ने की बात तो दूर, उसकी आकृति तक देखी नहीं होती। एक दिन मुझे एक उच्चतर डिग्रीधारी ऐसे व्यक्ति मिले जो तुलसीदास की चौपाई **"ढोल, गंवार, शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी"** को मनु का श्लोक कहकर मनु की आलोचना करने लगे। इससे सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि मनु का विरोध करने वालों में मनु और मनुस्मृति के विषय में सामान्य ज्ञान का कितना अभाव है!

सामान्य व्यक्तियों की बात छोड़ दीजिये, डॉ० अम्बेडकर जैसा व्यापक अध्येता भी मनु-विरोध के प्रवाह में इतना बहक गया है कि उन्हें प्रत्येक शूद्र-विरोध मनुविहित नज़र आता है।

शंकराचार्य द्वारा लिखित शूद्रविरोधी वचनों को भी उन्होंने मनुस्मृति-प्रोक्त कहकर मनु के खाते में जोड़ दिया है ! साधारण लेखकों में मनु के नाम पर जो अराजकता पायी जाती है, उसका विवरण लम्बा है । ये सब बातें इंगित करती हैं कि मनुस्मृति को गम्भीरता से पढ़ा नहीं जाता ।

ऐसा देखने में आया है कि मनु एवं मनुस्मृति का विरोध करने वालों में प्रमुखतः तीन प्रकार के व्यक्ति हैं । एक तो वे, जिन्होंने मनु को पूर्वाग्रहग्रस्त अंग्रेजी अलोचनाओं और उस परम्परा के माध्यम से पढ़ा है, और जो प्राचीन भारतीय साहित्य में कालक्रम से हुए परिवर्तनों-प्रक्षेपों से परिचित नहीं हैं । दूसरे वे, जिन्होंने मनुस्मृति के मौलिक और प्रक्षिप्त, दोनों पक्षों को चिन्तन-मनन पूर्वक नहीं पढ़ा है । तीसरे वे, जिन्होंने किन्हीं भ्रान्तियों, पूर्वाग्रहों और निहित स्वार्थों के कारण मनु के विरोध को अपना लक्ष्य बना लिया है । किन्तु वास्तविकता यह है कि महर्षि मनु का व्यक्तित्व और कृतित्व निंदा और विरोध करने का पात्र नहीं है । वे भारत और भारतीयता के लिए गर्व और गौरव के विषय हैं ।

भारत में मनु की प्रतिष्ठा

महर्षि मनु ही पहले वह व्यक्ति हैं, जिन्होंने संसार को एक व्यवस्थित, नियमबद्ध, नैतिक एवं आदर्श मानवीय जीवन जीने की पद्धति सिखायी है । वे मानवों के आदि पुरुष हैं, आदि धर्मशास्त्रकार, आदि विधिप्रणेता, आदि विधिदाता (लॉ गिवर), आदि समाज और राजनीति व्यवस्थापक, आदि राजर्षि हैं । मनु ही वह प्रथम धर्मगुरु हैं, जिन्होंने यज्ञपरम्परा का प्रवर्तन किया । उनके द्वारा रचित धर्मशास्त्र, जिसको कि आज मनुस्मृति के नाम से जाना जाता है, सबसे प्राचीन स्मृतिग्रन्थ है । अपने साहित्य और इतिहास को उठाकर देख लीजिए, वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक काल तक एक सुदीर्घ परम्परा उन शास्त्रकारों, साहित्यकारों, लेखकों, कवियों और राजाओं की मिलती है, जिन्होंने मुक्तकण्ठ से मनु की प्रशंसा की है । वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मणग्रन्थों में मनु के वचनों को **"औषध के समान हितकारी और गुणकारी"** कहा है । महर्षि वाल्मीकि रामायण में मनु को एक प्रामाणिक धर्मशास्त्रज्ञ के रूप में उद्धृत करते हैं और हिन्दुओं में भगवान् के रूप में पूज्य राम अपने आचरण को शास्त्रसम्मत सिद्ध करने के लिए उसके समर्थन में मनु के श्लोकों को उद्धृत करते हैं । महाभारत में अनेक स्थलों पर मनु का सर्वोच्च धर्मशास्त्र और न्यायशास्त्री के रूप में उल्लेख करते हुए उनके धर्मशास्त्र को परीक्षासिद्ध घोषित किया है । अनेक पुराणों में मनु को आदि राजर्षि, शास्त्रकार आदि विशेषणों से विभूषित करके उन्हें लोक हितकारी व्यक्तित्व के रूप में वर्णित किया है । निरुक्त में आचार्य यास्क ने मनु के मत को उद्धृत करके 'पुत्र-पुत्री के समान दायभाग' के विषय में प्रामाणिक माना है । कौटिल्य अर्थशास्त्र में चाणक्य ने मनु के मत को प्रमाण रूप में उद्धृत किया है । स्मृतिकार बृहस्पति मनु की स्मृति को सबसे प्रामाणिक स्मृति मानकर उसके विरुद्ध स्मृतियों को अमान्य घोषित करते हैं । बौद्ध कवि अश्वघोष ने अपनी कृति 'वज्रकोपनिषद्' में मनु के वचनों को प्रमाणरूप में उद्धृत किया है । याज्ञवल्क्यस्मृति, मनुस्मृति पर ही आधारित है ।

सभी धर्मसूत्रों और स्मृतियों में मनु के वचनों को समर्थन में प्रस्तुत किया है । वलभी के राजा धारसेन के ५७१ ईस्वी के शिलालेख में मनुधर्म को प्रामाणिक घोषित किया है । बादशाह शाहजहां के लेखक पुत्र दाराशिकोह ने मनु को वह प्रथम मानव कहा है, जिसे यहूदी, ईसाई, मुसलमान आदम कहकर पुकारते हैं । गुरु गोविन्दसिंह ने 'दशम ग्रन्थ' में मनु का मुक्तकण्ठ से गुणगान किया है ।

आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने वेदों के बाद मनुस्मृति को ही धर्म में प्रमाण माना है । श्री अरविन्द ने मनु को अर्धदेव के रूप में सम्मान दिया है । श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर, डॉ० राधाकृष्णन्, जवाहरलाल नेहरु आदि राष्ट्रनेताओं ने मनु को आदि 'लॉ गिवर' के रूप में उल्लिखित किया है । अनेक कानूनविदों जस्टिस डी.एन. मुल्ला, एन. राघवाचार्य आदि ने स्वरचित हिन्दू लॉ सम्बन्धी ग्रन्थों में मनु के विधानों को 'अथारिटी' घोषित किया है । मनु की इन्हीं विशेषताओं के आधार पर, लोकसभा में भारत का संविधान प्रस्तुत करते समय जनता और पं० नेहरु ने तथा जयपुर में डॉ० अम्बेडकर की प्रतिभा का अनावरण करते समय तत्कालीन राष्ट्रपति आर. वेंकटरमन ने डॉ. अम्बेडकर को 'आधुनिक मनु' की संज्ञा से गौरवान्वित किया था ।

विदेशों में महर्षि मनु की प्रतिष्ठा

मनु की प्रतिष्ठा, गरिमा और महिमा का प्रभाव एवं प्रसार विदेशों में भी भारत से कम नहीं रहा है । ब्रिटेन, अमेरिका, जर्मन से प्रकाशित 'इन्साइक्लोपीडिया' में मनु को मानवजाति का आदि पुरुष, आदि धर्मशास्त्रकार, आदि विधिप्रणेता, आदि न्यायशास्त्री और आदि समाजव्यवस्थापक वर्णित किया है । मनु के मन्तव्यों का समर्थन करते हुए अपनी पुस्तकों में मैक्समूलर, ए.ए. मैकडानल, ए.बी. कीथ, पी. थामस, लुईसरेनो आदि पाश्चात्य लेखकों ने मनुस्मृति को धर्मशास्त्र के साथ-साथ एक 'लॉ बुक' भी माना है और उसके विधानों को सार्वभौम, सार्वजनीन तथा सबके लिए कल्याणकारी बताया है । भारतीय सुप्रीम कोर्ट के तत्कालीन जज सर विलियम जोन्स ने तो भारतीय विवादों के निर्णय में मनुस्मृति की अपरिहार्यता को देखकर संस्कृत सीखी और मनुस्मृति को पढ़कर उसका सम्पादन भी किया । जर्मन के प्रसिद्ध दार्शनिक फ्रीडरिच नीत्से ने तो यहां तक कहा कि **"मनुस्मृति बाइबल से उत्तम ग्रन्थ है"** बल्कि **"उससे बाइबल की तुलना करना ही पाप है ।"** अमेरिका से प्रकाशित 'इन्साइक्लोपीडिया आफ दि सोशल साइंसिज', 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया', कीथरचित 'हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर', भारतरत्न पी.वी. काणे रचित 'धर्मशास्त्र का इतिहास' डॉ० सत्यकेतु रचित 'दक्षिण-पूर्वी और दक्षिण एशिया में भारतीय संस्कृति' आदि पुस्तकों में विदेशों में मनुस्मृति के प्रभाव और प्रसार का जो विवरण दिया गया है, उसे पढ़कर प्रत्येक भारतीय अपने अतीत पर गर्व कर सकता है ।

बालि द्वीप, बर्मा, फिलीपीन, थाइलैंड, चम्पा (दक्षिणी वियतनाम) कम्बोडिया, इन्डोनेशिया, मलेशिया, श्रीलंका, नेपाल आदि देशों से प्राप्त शिलालेखों और उनके प्राचीन इतिहास से ज्ञात होता

है कि वहां प्रमुखतः मनु के धर्मशास्त्र पर आधारित-कर्मानुसारी वर्णव्यवस्था रही है। मनु के विधानों को सर्वोच्च महत्त्व दिया जाता था और उन्हीं के अनुसार न्याय होता था। शिलालेखों में मनुस्मृति के अनेक श्लोक उत्कीर्ण पाये गये हैं। राजा लोग स्वयं को मनु का अनुयायी अथवा मनुमार्गगामी कहने में गर्व अनुभव करते थे और मनु की उपाधि धारण करके स्वयं को गौरवान्वित मानते थे। चम्पा (दक्षिणी वियतनाम) में प्राप्त एक अभिलेख के अनुसार राजा जयइन्द्रवर्मदेव मनुमार्ग का अनुसरण करने वाला था। कम्बोडिया के राजा उदयवीर वर्मा के 'सदोक काकथोम' से प्राप्त अभिलेख में 'मानवनीतिसार' ग्रन्थ का उल्लेख हे, जो मनुस्मृति पर आधारित था। 'प्रसत कोमपन' से प्राप्त राजा यशोवर्मा के अभिलेख में मनुस्मृति का २.१३६ श्लोक उद्धृत मिलता है। राजा जयवर्मा के अभिलेख में मनुसंहिता के विशेषज्ञ एक मन्त्री का उल्लेख है। बालिद्वीप में आज भी मनु-व्यवस्था है। उक्त देशों की आचारसंहिताएं/संविधान मनुस्मृति पर ही आधारित थे और बहुत कुछ अब भी हैं। फिलीपीन के निवासी मानते हैं कि उनकी आचार संहिता के निर्माण में मनु और लाओत्से की स्मृति का प्रमुख योगदान है, इस कारण वहां की विधानसभा के द्वार पर इन दोनों की मूर्तियां स्थापित की गयीं।

हम मनु का कितना ही विरोध कर लें और चाहे कितनी ही निन्दा कर लें, मनु का हम से जो सम्बन्ध बन चुका है, वह जब तक इतिहास और यह समाज रहेगा, तब तक मिट नहीं सकता। आदिवंश प्रवर्तक होने के कारण मनु को न कभी त्यागा जा सकता है, न भुलाया जा सकता है।

भारतीय साहित्य और समाज मनु को अपना आदि-पुरुष मानता है। सभी मनुष्य मनु की सन्तान हैं। इसी कारण आदमी के वाचक जितने भी नाम हैं, वे 'मनु' शब्द से बने हैं, जैसे-मनुष्य, मनुज, मानव, मानुष आदि। इसीलिए निरुक्तकार ने इनकी व्युत्पत्ति करते हुए कहा है-

"मनोः अपत्यम्, मनुष्यः" (३.४)

अर्थात्—'मनु की सन्तान होने से हमें मनुष्य कहा जाता है।' ब्राह्मणग्रन्थों में भी **"मानव्यः प्रजाः"** कहकर इसी तथ्य को प्रस्तुत किया गया है। यूरोपीय विद्वानों ने भाषा विज्ञान के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि कभी यूरोप, ईरान और भारतीय उपमहाद्वीप निवासी एक ही परिवार के सदस्य थे। इन सबकी भाषाओं में मनुष्यवाचक जो शब्द प्रचलित हैं, वे मनुमूलक शब्दों के अपभ्रंश हैं। जैसे, ग्रीक और लैटिन में माइनोस, जर्मनी में मन्न, स्पेनिश में मन्ना; अंग्रेजी तथा उसकी बोलियों में मैन, मेनिस, मनुस्, मनेस, मनीस आदि; ईरानी-फारसी में नूह (मनुस् के स् को ह होकर और म का लोप होकर) कहा जाता है। इन देशों के ऐतिहासिक उल्लेखों से इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है। ईरानवासी आज भी स्वयं को आर्यवंशी मानते हैं और अपना मूल उद्गम आर्यों के 'सप्तसिन्धु' देश से मानते हैं। कम्बोडिया के निवासी स्वयं को मनु की सन्तान कहते हैं। थाईलैंड के निवासी स्वयं को सूर्यवंशी राम के वंशज मानते हैं। राम और कृष्ण दोनों ही मनु की वंशपरम्परा में आते हैं। इस

विवरण को पढ़कर हम कह सकते हैं कि अतीत में एक धर्मशास्त्रकार और विधिदाता (लॉ गिवर) के रूप में महर्षि मनु को जो प्रतिष्ठा और महत्त्व मिला है, वह किसी अन्य को नहीं मिला।

मनु और मनुस्मृति पर आक्षेप

आइये, अब मनु और मनुस्मृति पर लगाये जाने वाले आक्षेपों पर विचार करें। मुख्यरूप से उन्हें तीन वर्गों में बांटा जा सकता है-

(क) मनु ने जन्म पर आधारित जाति-पांति व्यवस्था का निर्माण किया।

(ख) उस व्यवस्था में मनु ने शूद्रों अर्थात् दलितों के लिए पक्षपातपूर्ण एवं अमानवीय विधान किये हैं, जबकि सवर्णों, विशेषतः ब्राह्मणों को विशेषाधिकार प्रदान किये हैं। इस प्रकार मनु शूद्रविरोधी थे।

(ग) मनु स्त्रीविरोधी थे। उन्होंने स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार नहीं दिये। मनु ने स्त्रियों की निन्दा की है।

इन तीनों आक्षेपों के समाधान के लिए बाह्य प्रमाणों और मतों की अपेक्षा अन्तःसाक्ष्य अधिक प्रामाणिक रहेंगे, अतः यहां मनुस्मृति के अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत किये जाते हैं-

(क) मनु की वर्णव्यवस्था का वास्तविक स्वरूप

१. **मनु की वर्णव्यवस्था गुण-कर्म-योग्यता पर आधारित और वेदमूलक**—मनुस्मृति में वर्णित गुण-कर्म-योग्यता पर आधारित वर्णव्यवस्था वेदमूलक है। यह मूलतः तीन वेदों (ऋग् १०.९०.११-१२; यजु० ३१.१०-११; अथर्व० १९.६.५-६) में पायी जाती है। मनु वेदों को धर्म में परम प्रमाण मानते हैं, अतः उन्होंने वर्णव्यवस्था को धर्ममूलक व्यवस्था मानकर उसे वेदों से ग्रहण करके अपने शासन में क्रियान्वित किया तथा धर्मशास्त्र के द्वारा प्रचारित एवं प्रसारित किया।

२. **वर्णव्यवस्था और जातिव्यवस्था में अन्तर और परस्परविरोध**—मनु की वैदिक वर्णव्यवस्था गुण-कर्म-योग्यता पर आधारित है, जन्म पर आधारित नहीं। यह समझ लेना आवश्यक है कि वर्णव्यवस्था और जातिव्यवस्था परस्पर विरोधी व्यवस्थाएं हैं। एक की उपस्थिति में दूसरी नहीं टिक सकती। इनके अन्तर्निहित अर्थभेद को समझकर इनके मौलिक अन्तर को आसानी से समझा जा सकता है। वर्णव्यवस्था में वर्ण प्रमुख है और जातिव्यवस्था में जाति अर्थात् 'जन्म' प्रमुख है। जिन्होंने इनका समानार्थ में प्रयोग किया है उन्होंने स्वयं को और पाठकों को भ्रान्त कर दिया। 'वर्ण' शब्द 'वृञ्-वरणे' धातु से बना है, जिसका अर्थ है-'जिसको वरण किया जाये' वह समुदाय। निरुक्त में आचार्य यास्क ने इसके अर्थ को इस प्रकार स्पष्ट किया है-

"वर्णः वृणोतेः" (२.१४) = वरण करने से 'वर्ण' कहलाता है।

जबकि जाति का अर्थ है-'जन्म'। इस अर्थ में जाति शब्द का प्रयोग मनुस्मृति में हुआ है-

"जाति-अन्धबधिरौ" (१.२०१) = जन्म से अन्धे-बहरे।
"जातिं स्मरति पौर्विकीम्" (४.१४८) = पूर्वजन्म को स्मरण करता है।
"द्विजातिः" (१०.४) = द्विज, क्योंकि उसके दो जन्म होते हैं।
"एकजातिः" (१०.४) = शूद्र, क्योंकि उसका विद्याजन्म नहीं होता।
एक जन्म ही होता है।

वैदिक वर्णव्यवस्था में समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चार समुदायों में व्यवस्थित किया गया है। जब तक गुण-कर्म-योग्यता के आधार पर व्यक्ति इन समुदायों का वरण करते रहे, तब तक वह वर्णव्यवस्था कहलायी। जब जन्म से ब्राह्मण, शूद्र आदि माने जान लगे तो वह जातिव्यवस्था बन गयी। वर्ण शब्द का धातु-प्रत्ययमूलक अर्थ ही यह संकेत देता है कि जब यह व्यवस्था बनी तब यह गुण-कर्म-योग्यता के अनुसार वरण की जाती थी, जन्म से नहीं थी।

३. **वर्णों में जातियों का उल्लेख नहीं**-मनु की कर्मणा वर्णव्यवस्था का साधक एक बहुत बड़ा प्रमाण यह है कि मनु ने केवल चार वर्णों का उल्लेख किया है, किन्हीं जातियों अथवा गोत्रों का परिगणन नहीं किया है। इससे दो तथ्य स्पष्ट होते हैं। एक-मनु के समय जन्मना कोई जाति नहीं थी। दो-जन्म अथवा गोत्र का वर्णव्यवस्था में कोई महत्त्व नहीं था और न उसके आधार पर वर्ण की प्राप्ति होती थी। यदि मनु के समय जातियां होतीं और जन्म के आधार पर वर्ण का निर्धारण होता तो वे उन जातियों का परिगणन अवश्य करते और बतलाते कि अमुक जातियां या गोत्र ब्राह्मण हैं और अमुक शूद्र। मनु, जन्माधारित महत्ताभाव को कितना उपेक्षणीय समझते हैं, इसका ज्ञान उस श्लोक से होता है जहां भोजनार्थ कुल-गोत्र का कथन करने वाले को उन्होंने 'वान्ताशी = वमन करके खाने वाला' जैसे निन्दित विशेषण से अभिहित किया है (३.१०९)। और आदर-बड़प्पन के मानदण्डों में कुल-गोत्र-जाति का उल्लेख ही नहीं है, केवल गुण-कर्मों का है।

४. **मनु को जातिव्यवस्थापक मानने से मनुस्मृति-रचना व्यर्थ**-यदि हम मनु को जन्मना वर्णव्यवस्था का प्रतिपादक मान लेते हैं तो इससे मनुस्मृतिरचना का उद्देश्य ही व्यर्थ हो जायेगा, क्योंकि मनुस्मृति में पृथक्-पृथक् वर्णों के लिए पृथक्-पृथक् कर्मों का विधान किया गया है। यदि कोई व्यक्ति जन्म से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र कहलाने लगता है, तो वह विहित कर्म करे या न करे, वह उसी वर्ण में रहेगा। उसके लिए कर्मों का विधान निरर्थक है। मनु ने जो पृथक् कर्मों का निर्धारण किया है, वही यह सिद्ध करता है कि वे कर्म के अनुसार वर्णव्यवस्था को मानते हैं, जन्म से नहीं।

५. **वर्णव्यवस्था में वर्णपरिवर्तन का विधान**-वर्णव्यवस्था और जातिव्यवस्था में एक बहुत बड़ा अन्तर यह है कि वर्णव्यवस्था में वर्णपरिवर्तन हो सकता है और व्यक्ति को वर्णपरिवर्तन की स्वतन्त्रता होती है,जबकि जातिव्यवस्था में जहां जन्म हो गया,जीवनपर्यन्त वही जाति रहती है । मनु की व्यवस्था वर्णव्यवस्था थी,जिसमें व्यक्ति को वर्ण परिवर्तन की स्वतन्त्रता थी । इस विषय में मनुस्मृति का एक महत्त्वपूर्ण श्लोक प्रमाणरूप में उद्धृत किया जाता है जो सभी सन्देहों को दूर कर देता है-

शूद्रो ब्राह्मणताम् एति, ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियात् जातमेवं तु विद्याद् वैश्यात्तथैव च ॥

(अ० १०, श्लोक ६५)

अर्थात्—'गुण,कर्म,योग्यता के आधार पर ब्राह्मण,शूद्र बन जाता है और शूद्र ब्राह्मण । इसी प्रकार क्षत्रियों और वैश्यों में भी वर्णपरिवर्तन हो जाता है ।'

६. **निर्धारित कर्मों के त्याग से वर्णपरिवर्तन**-मनुस्मृति में दर्जनों ऐसे श्लोक हैं, जिनमें निर्धारित कर्मों के त्याग से और निकृष्ट कर्मों के कारण द्विजों को शूद्र कोटि में परिगणित करने का विधान किया है [द्रष्टव्य २ । ३७,४०,१०३,१६८;४ । २४५ आदि श्लोक] । और शूद्रों को श्रेष्ठ कर्मों से उच्चवर्ण की प्राप्ति का विधान है (९.३३५) ।

७. **महाभारत काल तक वर्णव्यवस्था का प्रचलन**-उक्त प्रमाणों और युक्तियों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मनु द्वारा विहित वर्णव्यवस्था में सभी व्यक्तियों को गुण-कर्मानुसार वर्ण में दीक्षित होने के समान अवसर प्राप्त थे । ऋग्वेद से लेकर महाभारत (गीता) पर्यन्त यह कर्माधारित वर्णव्यवस्था चलती रही है । गीता में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है-

"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण-कर्म-विभागशः" [४ । १३]

अर्थात्-गुण-कर्म-विभाग के अनुसार चातुर्वर्ण्यव्यवस्था का निर्माण किया गया है । जन्म के अनुसार नहीं ।

८. **वर्ण परिवर्तन के ऐतिहासिक उदाहरण**-भारतीय इतिहास में,सैकड़ों ऐसे प्रमाण उपलब्ध हैं,जो कर्म पर आधारित वर्णव्यवस्था की पुष्टि करते हैं,जो यह सिद्ध करते हैं कि किसी भी वर्ण को जन्म के आग्रह से नहीं जोड़ा गया । जैसे-(१) दासी का पुत्र 'कवष ऐलूष' और शूद्रापुत्र 'वत्स' मन्त्रद्रष्टा होने के कारण दोनों ऋग्वेद के ऋषि कहलाये । (२) क्षत्रिय कुल में उत्पन्न राजा विश्वामित्र ब्रह्मर्षि बने ।(३) अज्ञात कुल के सत्यकाम जाबाल ब्रह्मवादी ऋषि बने । (४) चंडाल के घर में उत्पन्न 'मातंग' एक ऋषि कहलाये ।(५) [कुछ कथाओं के अनुसार] निम्न कुल में उत्पन्न वाल्मीकि,महर्षि वाल्मीकि की पदवी को प्राप्त कर गये । (६) दासीपुत्र विदुर राजा धृतराष्ट्र के महामन्त्री बने और

महात्मा कहलाये। (७) दशरथ पुत्र श्री राम और यदु कुल में उत्पन्न श्रीकृष्ण 'भगवान्' माने गये। वे ब्राह्मणों के भी पूज्य बने, जबकि उनका कुल क्षत्रिय था। इसके विपरीत कर्मों के ही कारण, (८) पुलस्त्य ऋषि का वंशज लंकाधिपति रावण 'राक्षस' कहलाया। (९) राम के पूर्वज रघु का 'प्रवृद्ध' नामक पुत्र नीच कर्मों के कारण क्षत्रियों से बहिष्कृत होकर 'राक्षस' बना। (१०) राजा त्रिशंकु चंडालभाव को प्राप्त हुआ। (११) विश्वामित्र के कई पुत्र शूद्र कहलाये।

९ **जातियों के वर्णपरिवर्तन**-व्यक्तिगत उदाहरणों के अतिरिक्त, इतिहास में पूरी जातियों का अथवा जाति के पर्याप्त भाग का वर्णपरिवर्तन भी मिलता है। महाभारत और मनुस्मृति में कुछ पाठभेद के साथ पाये जाने वाले श्लोकों से ज्ञात होता है कि निम्न जातियां पहले क्षत्रिय थीं किन्तु अपने क्षत्रिय कर्तव्यों के त्याग के कारण और ब्राह्मणों द्वारा बताये प्रायश्चित्त न करने के कारण वे शूद्रकोटि में परिगणित हो गयीं-

शनकैस्तु क्रियालोपादिमा क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च॥
पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडाः काम्बोजाः यवनाः शकाः।
पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराताः दरदाः खशाः॥ (१०.४३-४४)

अर्थात्-अपने निर्धारित कर्तव्यों का त्याग कर देने के कारण और फिर ब्राह्मणों द्वारा बताये प्रायश्चित्तों को न करने के कारण धीरे-धीरे ये क्षत्रिय जातियां शूद्र कहलायीं-पौण्ड्रक, औड्र, द्रविड़, कम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद, खश॥ महाभारत अनु० ३५.१७-१८ में इनके अतिरिक्त मेकल, लाट, कान्वशिरा, शौण्डिक, दार्व, चौर, शबर, बर्बर जातियों का भी उल्लेख है।

बाद तक भी वर्णपरिवर्तन के उदाहरण इतिहास में मिलते हैं। जे. विलसन और एच.एल. रोज के अनुसार राजपूताना, सिन्ध और गुजरात के पोखरना या पुष्करण ब्राह्मण, और उत्तर प्रदेश में उन्नाव जिला के आमताड़ा के पाठक और महावर राजपूत वर्णपरिवर्तन से निम्न जाति से ऊंची जाति के बने (देखिए हिन्दी विश्वकोश भाग ४)।

१०. **चारों वर्णों में पाये जाने वाले समान गोत्रों का रहस्य**-ब्राह्मणों, क्षत्रिय जातियों, वैश्य और दलित जातियों में समान रूप से पाये जाने वाले गोत्र, ऐतिहासिक वंश परम्परा के पुष्ट प्रमाण हैं, जो यह सिद्ध करते हैं कि वे सभी एक ही मूल परिवारों के वंशज हैं। पहले वर्णव्यवस्था में जिसने गुण-कर्म-योग्यता के आधार पर जिस वर्ण का चयन किया, वे उस वर्ण के कहलाने लगे। बाद में विभिन्न कारणों के आधार पर उनका ऊंचा-नीचा वर्णपरिवर्तन होता रहा। किसी क्षेत्र में वही ब्राह्मण वर्ण में रह गया तो कहीं क्षत्रिय, तो कहीं शूद्र कहलाया। कालक्रमानुसार जन्म के आधार पर उनकी जाति रूढ़ हो गयी।

११. **वर्णव्यवस्था के आधारभूत तत्त्व**-मनुस्मृति में वर्णित वर्णव्यवस्था के आधारभूत तत्त्व हैं-गुण, कर्म, योग्यता। मनु व्यक्ति अथवा वर्ण को महत्त्व और आदर-सम्मान नहीं देते अपितु उक्त

गुणों को देते हैं। जहां इनका आधिक्य है, उस व्यक्ति और वर्ण का महत्त्व, आदर-सम्मान अधिक है, न्यून होने पर न्यून है। आज तक संसार की कोई भी सभ्य व्यवस्था इन तत्त्वों को न नकार पायी है और न नकारेगी। इनको नकारने का अर्थ है-अन्याय, असन्तोष, आक्रोश, अव्यवस्था और अराजकता। मुहावरों की भाषा में इसी स्थिति को कहते हैं 'घोड़े-गधे को एक समझना' या 'सभी को एक लाठी से हांकना।' इसका परिणाम होता है, कोई भी समाज या राष्ट्र न विकास कर सकता है, न उन्नति; न समृद्ध हो सकता है, न सम्पन्न; न सुखी हो सकता है, न संतुष्ट; न शान्त रह सकता है, न अनुशासित; न व्यवस्थित रह सकता है, न अखण्डित। ऐसी व्यवस्था अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकती। वर्तमान में निश्चित सर्वसमानता का दावा करने वाली साम्यवादी व्यवस्था भी इन तत्त्वों से स्वयं को पृथक् नहीं रख सकी। उसमें भी गुण-कर्म-योग्यता के अनुसार पद और सामाजिक स्तर हैं। उन्हीं के अनुरूप वेतन, सुविधा और सम्मान में अन्तर हैं।

हमारी आजकल की प्रशासनिक और व्यावसायिक व्यवस्था की तुलना करके देखिए, मनु की बात आसानी से समझ आ जायेगी और ज्ञात होगा कि मनु की और आज की इन व्यवस्थाओं में मूलभूत समानता है। सरकार की प्रशासन व्यवस्था में चार वर्ग हैं- १. प्रथम श्रेणी राजपत्रित अधिकारी, २. द्वितीय श्रेणी राजपत्रित अधिकारी, ३-४ तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी। इनमें प्रथम दो वर्ग अधिकारी हैं, दूसरे कर्मचारी। यह विभाजन गुण-कर्म-योग्यता के आधार पर है और इसी आधार पर इनका महत्त्व, सम्मान एवं अधिकार हैं। इन पदों के लिए योग्यताओं का प्रमाणीकरण पहले भी शिक्षासंस्थान (गुरुकुल, आश्रम, आचार्य) करते थे और आज भी शिक्षासंस्थान (विद्यालय, विश्वविद्यालय आदि) ही करते हैं। शिक्षा का कोई प्रमाणपत्र नहीं होने से, अल्पशिक्षित या अशिक्षित व्यक्ति सेवा और शारीरिक श्रम के कार्य ही करता है और वह अन्तिम कर्मचारी श्रेणी में आता है। पहले भी जो गुरु के पास जाकर विद्या प्राप्त नहीं करता था, वह इसी स्तर के कार्य करता था और उसकी संज्ञा 'शूद्र' थी। शूद्र के अर्थ हैं-'निम्न स्थिति वाला' 'आदेशवाहक' आदि। नौकर, चाकर, सेवक, प्रेष्य, सर्वेंट, अर्दली, निम्न श्रेणी कर्मचारी, आदि संज्ञाओं में कितनी अर्थसमानता है आप स्वयं देख लीजिये। व्यवसायों के निर्धारण में भी बहुत अन्तर नहीं है। शिक्षासंस्थानों से डाक्टर, वकील, अध्यापक, आदि की डिग्री प्राप्त करके ही व्यवसाय की अनुमति है, उसके बिना नहीं। सबके नियम-कर्तव्य निर्धारित हैं। उनकी पालना न करने वाले को व्यवसाय और पद से हटा दिया जाता है।

१२. **शूद्रों को वर्ण परिवर्तन के व्यावहारिक अवसर**-जो लोग अपने आपको 'शूद्र' समझते हैं और अभी तक किसी कारण से स्वयं को 'शूद्रकोटि' में मानकर मानवीय अधिकारों से वंचित रखा हुआ है, मनु को धर्मगुरु मानने वाला और मनु के सिद्धान्तों तथा व्यवस्थाओं पर चलने वाला 'आर्यसमाज' योग्यतानुसार किसी भी वर्ण में दीक्षित होने का उनका आह्वान करता है और उन्हें व्यावहारिक अवसर देता है। जब आज का संविधान नहीं बना था, उससे बहुत पहले महर्षि दयानन्द ने मनुस्मृति के आदेशों के परिप्रेक्ष्य में छूत-अछूत, ऊंच-नीच, जाति-पांति, नारी-शूद्रों को न पढ़ाना,

बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, बहु-विवाह, सती प्रथा, शोषण आदि को सामाजिक बुराइयां घोषित करके उनके विरुद्ध संघर्ष किया था। नारियों के लिए गुरुकुल और विद्यालय खोले। अपनी शिक्षा संस्थाओं में शूद्रों को प्रवेश दिया, परिणामस्वरूप वहां शिक्षित सैंकड़ों दलित संस्कृत एवं वेद-शास्त्रों के विद्वान् स्नातक बन चुके हैं। दलित जाति के लोग क्यों भूलते हैं कि उनकी अस्पृश्यता को मिटाने के लिए, मनु के अनुगामी और ऋषि दयानन्द के शिष्य कितने ही आर्यसमाजी स्वयं 'अस्पृश्य' बन गये थे, किन्तु उन्होंने संघर्ष को नहीं छोड़ा। इन घटनाओं से अनभिज्ञ दलित-लेखक आर्यसमाज को भी रंगीन चश्मे से देखते हैं। क्या उनकी यह अकृतज्ञता नहीं है?

१३. **व्यवस्था का सही मूल्यांकन**-मनुका समय अति प्राचीन है। यद्यपि उन्होंने मनुस्मृति में जो आदर्श जीवनमूल्य, मर्यादाएं और धर्म का स्वरूप प्रस्तुत किया है, वह सार्वभौम एवं सार्वकालिक है, किन्तु जो देश-काल-परिस्थितियों पर आधारित व्यवस्थाएं हैं, वे तदनुसार परिवर्तनीय हैं। मनु ने अपने समय जिस सामाजिक व्यवस्था को ग्रहण किया वह उस समय की सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था थी। यही कारण है वह व्यवस्था अत्यन्त व्यापक प्रभाव वाली रही और हजारों वर्षों तक वह प्रचलित होती आयी है। इस कालचक्र में कुछ व्यवस्थाएं अपने मूल स्वरूप को खोकर विकृत हो गयीं। आज राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियां बदलीं, हम राजतन्त्र से प्रजातन्त्र में आ गये। समयानुसार अनेक सामाजिक व्यवस्थाओं में भी परिवर्तन हुआ। किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि प्राचीनता हमारे लिए पूर्णतः अग्राह्य और अपमान की वस्तु बन गयी। यदि हमारी यही सोच उभरती है तो प्राचीन गौरव से जुड़ी प्रत्येक वस्तु जैसे-महापुरुष, वीर पुरुष, कवि, लेखक, नगर, तीर्थ, भवन, साहित्य, इतिहास सभी कुछ निन्दा की चपेट में आ जायेगा। किसी भी व्यवस्था, वस्तु, व्यक्ति का मूल्यांकन तत्कालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में ही किया जाना चाहिए, वही सही मूल्यांकन माना जा सकता है।

महर्षि मनु और डॉ० अम्बेडकर

१४. भारतीय लेखकों में मनु के विरोध की परम्परा के प्रमुख संवाहक और प्रेरणास्रोत डॉ० भीमराव अम्बेडकर थे। यद्यपि जन्मना जाति-पांति, ऊंच-नीच, छूत-अछूत जैसी कुप्रथाओं के कारण अपने जीवन में उन्होंने जिन उपेक्षाओं, असमानताओं, यातनाओं और अन्यायों को भोगा था, उस स्थिति में कोई भी स्वाभिमानी शिक्षित वही करता, जो उन्होंने किया; किन्तु मनु और मनुस्मृति को गम्भीरता एवं पूर्णता से समझे बिना, पूर्वाग्रहों के कारण, उन्होंने मनु के विषय में जो व्यवहार किया, वह भी सर्वथा अनुचित एवं अन्यायपूर्ण था। एक कानूनविद् होने के नाते उन पर इस अनौचित्य की जिम्मेदारी अधिक आती है। उन्होंने संविधान में प्रावधान किया है कि 'अनुचित निर्णय से निरपराध को दण्ड नहीं मिलना चाहिए, चाहे अपराधी मुक्त हो जाये।' किन्तु उन्होंने अपने जीवन में इसका पालन नहीं किया। परवर्ती समाज द्वारा बनायी गयी जन्माधारित सामाजिक व्यवस्थाओं को मनु पर थोंपकर अनावश्यक रूप से उन्हें दोषी घोषित करते रहे और उनके विरुद्ध निंदा अभियान

चलाते रहे, आर्य (हिन्दू) समाज में प्रतिष्ठित एक महर्षि के लिए बेहद कटु वचनों का प्रयोग करते रहे। हालांकि तत्कालीन बहुत से व्यक्ति उनका ध्यान बार-बार इस तथ्य की ओर आकर्षित करते रहे कि मनु के विषय में अभी उनकी कुछ भ्रान्तियां और पूर्वाग्रह हैं, वे उन्हें दूर कर लें, किन्तु वे पूर्वाग्रहों पर अड़े रहे। उसके कई कारण थे। जो कुछ तब वे मनु के विषय में लिख चुके थे, शायद उसको छोड़ना नहीं चाहते थे, और उन्हीं के शब्दों में **"उन पर मनु का भूत सवार था और उनमें इतनी शक्ति नहीं थी कि वे उसे उतार सकें।"** सत्य है, उस भूत को वे जीवन-पर्यन्त नहीं उतार सके और जीवन के उपरान्त उसे अपने अनुगामियों पर छोड़ गये। लेकिन क्या 'भूत सवार होना' सामान्य स्थिति, संतुलित विचार, विवेकपूर्ण सही समीक्षा का परिचायक माना जा सकता है ?

यह भी उनके जीवन की वास्तविकता है कि डॉ. अम्बेडकर संस्कृत के ज्ञाता नहीं थे। जैसा कि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है, उन्होंने मनुसम्बन्धी समस्त अध्ययन-विश्लेषण अंग्रेजी भाषा में लिखी आलोचनाओं के माध्यम से ग्रहण किया है, अतः वे मौलिक-प्रक्षिप्त आदि पहलुओं, श्लोकों के प्रसंगों आदि पर विचार नहीं कर सके। जो अंग्रेजी समालोचनाओं में पढ़ा, वही धारणाएं बन गयीं। डॉ. अम्बेडकर के समय तक मनुस्मृति के प्रक्षेपों पर कोई शोधकार्य भी नहीं हुआ था, अतः उन्हें मौलिक और प्रक्षिप्त श्लोकों में भेद करने का कोई स्रोत नहीं मिला। यदि उक्त कारण न होते तो शायद वे मनु और मनुस्मृति का इतना अविचारित विरोध नहीं करते।

१५. डॉ. अम्बेडकर के, मनु की वैदिक वर्णव्यवस्था विषयक, आधारभूत मन्तव्यों को यहां प्रस्तुत करके उन पर चर्चा करना इसलिए आवश्यक प्रतीत होता है कि उससे उनकी समीक्षा के साथ-साथ इस लेख को एक नया प्रमाण मिलेगा। वे लिखते हैं-

- "एक बात मैं आप लोगों को बताना चाहता हूं कि मनु ने जाति के विधान का निर्माण नहीं किया और न वह ऐसा कर सकता था। जातिप्रथा मनु से पूर्व विद्यमान थी।" (भारत में जातिप्रथा पृ० २९)
- "यह निर्विवाद है कि वेदों में चातुर्वर्ण्य के सिद्धान्त की रचना की है, जिसे पुरुषसूक्त के नाम से जाना जाता है।" (हिन्दुत्व का दर्शन पृ० १२२)
- "कदाचित् मनु जाति के निर्माण के लिए जिम्मेदार न हो परन्तु मनु ने वर्ण की पवित्रता का उपदेश किया है। ...वर्ण जाति की जननी है और इस अर्थ में, मनु जाति व्यवस्था का लेखक न भी हो, परन्तु उसका पूर्वज होने का उस पर निश्चित ही आरोप लगाया जा सकता है।" (हिन्दुत्व का दर्शन पृ० ४२)
- "मैं मानता हूं कि स्वामी दयानन्द व कुछ अन्य लोगों ने वर्ण के वैदिक सिद्धान्त की जो व्याख्या की है, वह बुद्धिमत्तापूर्ण है और घृणास्पद नहीं है। मैं यह व्याख्या नहीं मानता कि जन्म किसी व्यक्ति का समाज में स्थान निश्चित करने का निर्धारक तत्व हो। वह केवल योग्यता को मान्यता देती है।" (जातिप्रथा उन्मूलन, पृ० ११९)

- "वेद में वर्ण की धारणा का सारांश यह है कि व्यक्ति वह पेशा अपनाए, जो उसकी स्वाभाविक योग्यता के लिए उपयुक्त हो।" (वही पृ० ११९)
- "जाति का आधारभूत सिद्धान्त वर्ण के आधारभूत सिद्धान्त से मूल रूप से भिन्न है, न केवल मूलरूप से भिन्न है, बल्कि मूल रूप से परस्पर विरोधी है। पहला सिद्धान्त (वर्ण) गुण पर आधारित है।" (वही पृ० ८१)

१६. प्रस्तुत उद्धरणों में डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि वर्णव्यवस्था की रचना वेदों से हुई। मनु इसके निर्माता नहीं, केवल पोषक हैं। वेदों की वर्णव्यवस्था गुण-कर्म-योग्यता पर आधारित है, जो बुद्धिमत्तापूर्ण है और घृणास्पद नहीं है। वर्णव्यवस्था और जातिव्यवस्था परस्पर विरोधी हैं। मनु जाति व्यवस्था के निर्माता भी नहीं हैं। इस प्रकार मनु वर्णव्यवस्था और जातिव्यवस्था के निर्माता के आरोप से मुक्त हो जाते हैं। वर्णव्यवस्था के पोषक होने के कारण उन पर यह भी आरोप नहीं बनता कि उन्होंने जन्मना जातिवाद का पोषण किया। यदि वर्णव्यवस्था बुद्धिमत्तापूर्ण है और घृणास्पद नहीं है, तो व्यवस्था का पोषण करके उन्होंने उत्तम कार्य ही किया है, अपराध नहीं किया। मनु वैदिक धर्मावलम्बी होने से वेदों को परम प्रमाण मानते हैं। अपने धर्मग्रन्थों के आदेशों का पालन करते हुए उन्होंने उसकी अच्छी व्यवस्थाओं का प्रचार-प्रसार किया तो यह कोई दोष नहीं। सभी धर्मावलम्बी ऐसा करते हैं। बौद्ध बनने के बाद डॉ. अम्बेडकर ने भी बौद्ध विचारों का प्रचार-प्रसार किया है। यदि उनका यह कार्य उचित है, तो मनु का भी उचित है। इतनी स्वीकारोक्तियां होने के उपरान्त भी, आश्चर्य है कि डॉ. अम्बेडकर मनु को स्थान-स्थान पर जातिवाद का जिम्मेदार ठहरा कर उनकी निन्दा करते हैं। परवर्ती सामाजिक व्यवस्थाओं को मनु पर थोंपकर उन्हें कटु वचन कहना कहां का न्याय है?

संविधान में चवालीस वर्षों में अस्सी के लगभग संशोधन किये जा चुके हैं, जिनमें कुछ संविधान की मूल भावना के प्रतिकूल हैं, जैसे-अंग्रेजी की अवधि बढ़ाना, मुसलमानों में गुजाराभत्ता की शर्त हटाना आदि, क्या इन परवर्ती संशोधनों का, और भावी संशोधनों का जिम्मेदार डॉ. अम्बेडकर को ठहराया जा सकता है? यदि नहीं, तो हजारों वर्ष परवर्ती विकृत व्यवस्थाओं के लिए मनु को जिम्मेदार कैसे ठहराया जा सकता है?

१७. डॉ. अम्बेडकर का मानना है कि वर्णव्यवस्था जातिव्यवस्था की जननी है, क्योंकि वर्णव्यवस्था का मनु ने पोषण किया था, इसलिए मनु दोष के पात्र हैं। कितना अटपटा और लचीला तर्क है यह! ठीक जातिवाद जैसा। जैसे-किसी ने श्राद्ध नहीं किया तो वह पिछली छह पीढ़ियों के पूर्वजों सहित नरक में जायेगा, क्योंकि वे उसके जनक और पोषक हैं। किसी ने श्राद्ध किया तो उसकी पिछली छह-पीढ़ियां तर जायेंगी, क्योंकि वे उसकी जनक हैं। ऐसे ही, जातिव्यवस्था दोषपूर्ण है, अतः उसकी पूर्वव्यवस्था और उनके पोषक मनु भी दोषी हैं। आश्चर्य तो यह है कि कानूनवेत्ता एक कानूनदाता के लिए ऐसे आरोपों का प्रयोग कर रहा है! संविधान में तो डॉ. अम्बेडकर ने ऐसा

कानून नहीं बनाया कि किसी अपराधी को दण्ड देने के साथ-साथ उसके माता-पिता, दादा आदि को भी अपराधी घोषित कर दिया जाये, इसलिए कि वे उसके 'जनक' हैं। विगत को अपराधी घोषित करके उन्हें दण्डित और नष्ट-भ्रष्ट करने के इस सिद्धान्त को यदि कुछ राष्ट्रीय मामलों के लिए भी संविधान में भी लागू कर देते तो इससे उन राष्ट्रवादियों को सन्तोष होता, जिनकी यह विचारधारा रही है कि देश स्वतन्त्र होने के बाद उन लोगों को अपराधी घोषित करके दण्डित किया जाना चाहिए, जिन्होंने विगत में राष्ट्रदोह और स्वतन्त्रता द्रोह किया था, जिन्होंने विदेशी शासकों का सहयोग किया, गुप्तचरी की, देशभक्तों को फांसी दिलवायी। वे लोग मुरब्बे, पद पैसे पाकर तब भी सम्पन्न-सुखी थे, आज भी हैं और स्वतन्त्रतासेनानी दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं! शायद ही ऐसी छूट किसी व्यवस्था-परिवर्तन ने दी हो! यदि वैसा होता तो गद्दारों को सबक मिलता और भावी राष्ट्रीय एकता-अखण्डता और स्वतन्त्रता के हित में होता।

१८. वर्ण को जाति का जनक मानकर मनु को इस तरह दोषी ठहराया जा रहा है, जैसे मनु पहले ही जानते थे कि भविष्य में वर्ण से जाति का जन्म होगा, और इस आशा में वे जान बूझकर वर्ण का पोषण कर रहे थे! डॉ. अम्बेडकर ने वर्तमान संवैधानिक व्यवस्था का पोषण किया है। क्या वे जानते थे कि इससे भविष्य में कौन सी व्यवस्था का जन्म होगा? बिल्कुल नहीं। इसी प्रकार मनु को भी नहीं पता था कि वर्णव्यवस्था का भविष्य में क्या रूप होगा।

१९. डॉ. अम्बेडकर वर्तमान जाति-पांति रहित संविधान के निर्माता एवं पोषक हैं। दुर्भाग्य से, सैकड़ों वर्षों के बाद यदि यह जातिवादी रूप ले जाये तो क्या डॉ. अम्बेडकर उस के जनक होने के जिम्मेदार बनेंगे? सभी कहेंगे-नहीं, वे तो जातिवाद के विरोधी हैं, उन्हें जनक क्यों कहा जाये। इसी प्रकार जातिव्यवस्था, वर्णव्यवस्था की विरोधी व्यवस्था है। मनु को अपनी वर्णव्यवस्था की विरोधी जातिव्यवस्था का जनक कैसे कहा जा सकता है? इस प्रकार उन पर जातिव्यवस्था का जनक होने का आरोप सरासर गलत है। सच यह है कि बाद के समाज ने मनु की वर्णव्यवस्था को विकृत कर दिया और उसे जातिव्यवस्था में बदल दिया, अतः वही समाज इसका जनक भी है, दोषी भी।

२०. जो यह कहा गया है कि 'अकेला मनु न तो जातिव्यवस्था को बना सकता था और न लागू कर सकता था।' यह तो स्वयं ही डॉ. अम्बेडकर ने मान लिया कि इन दोनों बातों के लिए मनु जिम्मेदार नहीं है। इसका अर्थ यह निकला कि पहले से ही समाज में वर्णव्यवस्था प्रचलित थी और समाज ने उसे स्वयं स्वीकृत किया हुआ था। वह लोगों के दिल-दिमाग में रची-बसी व्यवस्था थी, लोगों द्वारा उत्तम मानी हुई व्यवस्था थी और सर्वस्वीकृत थी। मनु द्वारा थोपी नहीं गयी थी। समाज द्वारा स्वीकृत व्यवस्था थी, उसमें मनु का क्या दोष? आपने जनता द्वारा स्वीकृत वर्तमान व्यवस्था का पोषण किया है, मनु ने समाज द्वारा स्वीकृत अपने समय की वर्णव्यवस्था का पोषण किया था। इसमें दोष या दोषी होने का अवसर ही कहां है?

२१. संसार की सभी व्यवस्थाएं शतप्रतिशत मान्य और खरी नहीं होती। अतः कुछ कमियों के आधार पर परवर्ती जातिव्यवस्था (हिन्दू व्यवस्था) की निन्दा और अपमान करना कदापि उचित

नहीं माना जा सकता । आज की संवैधानिक व्यवस्था, जिसका न्याय, समानता आदि का दावा है, क्या सम्पूर्ण है ? अभी ही वह न जाने कितने विवादों से घिरी है । सामयिक आवश्यकता के आधार पर आरक्षण का प्रावधान किया गया है, फिर भी आज उस पर उग्र विवाद है । आज के सैकड़ों वर्ष पश्चात् जब ये परिस्थितियां विस्मृत हो जायेंगी, तब जो इस व्यवस्था का इतिहास लिखा जायेगा, शायद वह आरक्षित जातियों के लिए भी वैसा ही लिखा जायेगा, जो ब्राह्मणों के सन्दर्भ में आज प्राचीन धर्मशास्त्रों का लिखा जा रहा है ।

वर्तमान संवैधानिक व्यवस्थाओं में, उच्चतम अधिकारी से लेकर निम्नतम कर्मचारी तक के लिए परीक्षाओं-उपाधियों के अनुसार नियुक्ति का प्रावधान है । कुछ स्थान मनोनयन से भरे जाते हैं । थोड़े से वर्षों में ही स्थिति यहां तक पहुंच गयी है कि प्रशासनिक पदों के मनोनयन में, सत्ता में बैठे नेताओं, अधिकारियों के सम्बन्धी या सिफारिशी ही अधिकांशतः लिये जाते हैं, योग्यता का पैमाना भुला दिया गया है । साक्षात्कार योग्यता की जांच के लिए आयोजित होते हैं, किन्तु वहां भी हजारों नौकरियां सिफारिश और पैसे के आधार पर दी जा रही हैं । न्यायालयों द्वारा रद्द अनेक चयनसूचियां इसकी सत्यापित प्रमाण हैं । राजनीतिक क्षेत्र के पदों के मनोनयन में योग्यता नाम की कोई वस्तु दिखायी नहीं पड़ती । वहां अपने-पराये का नग्न रूप है । कल्पना कीजिए, जिसकी वि संभावनाएं प्रबल दिखायी पड़ रही हैं, सैंकड़ों वर्ष बाद ये व्यवस्थाएं और अधिक विकृत होकर यदि जन्माधारित रूप ले गयीं तो क्या उसकी जिम्मेदारी डॉ. अम्बेडकर और उनकी संविधान-सभा की मानी जायेगी ? क्या उन द्वारा प्रदत्त व्यवस्था उस भावी विकृत व्यवस्था की जननी मानी जानी चाहिए ? यदि नहीं, तो मनु को भी जाति-व्यवस्था का जनक और जिम्मेदार नहीं कहा जा सकता ।

२२. इनसे भी अधिक अविचारित और खतरनाक बात जो डॉ. अम्बेडकर ने कही है, वह है-"यदि आप जातिप्रथा में दरार डालना चाहते हैं तो इसके लिए आपको हर हालत में वेदों और शास्त्रों में डायनामाइट लगाना होगा ।" (जातिप्रथा उन्मूलन पृ.९९) । एक ओर वे मानते हैं कि वेदों में जातिव्यवस्था न होकर वर्णव्यवस्था है और वर्णव्यवस्था गुण-कर्म पर आधारित होने से बुद्धिमत्तापूर्ण है, घृणास्पद नहीं, फिर भी वेदों में डयनामाइट लगाने की अनुचित और उत्तेजक बात कहते हैं । कितना परस्पर विरोधी वक्तव्य है उनका ! वेद, धर्मशास्त्र, रामायण, महाभारत, पुराण, गीता सभी को नष्ट-भ्रष्ट करने और उनसे नाता तोड़ने की बात कही है उन्होंने ! धर्मजिज्ञासा, साहित्य, संस्कृति, सभ्यता, आचार-व्यवहार, जीवनमूल्य सभी के आश्रय और प्रेरणा स्रोत होते हैं धर्मशास्त्र । उनको नष्ट करने का अभिप्राय है आर्य (हिन्दू) संस्कृति-सभ्यता, धर्म, सब कुछ को नष्ट करना । क्या डॉ. अम्बेडकर यही चाहते थे ? यदि डॉ. अम्बेडकर हिन्दू धर्म में रहकर पीड़ित थे और उन्हें वह छोड़ना था, तो वे उसे छोड़कर केवल 'मनुष्य' के नाते भी रह सकते थे, किन्तु धर्म के आश्रय के बिना वे नहीं रह सके । उन्होंने बौद्ध धर्म का आश्रय लिया और बौद्ध धर्मशास्त्रों को प्रमाण माना जबकि हिन्दुओं को वे धर्म और धर्मशास्त्रों का त्याग करने को कहते हैं । यहां मैं महात्मा गांधी द्वारा उस समय दिये गये उत्तर को उद्धृत करना चाहूंगा-'जैसे कोई कुरान को अस्वीकार कर मुसलमान नहीं

हो सकता,बाइबल को अस्वीकार कर ईसाई नहीं हो सकता, वैसे ही वेदों-शास्त्रों को अस्वीकार कर कोई हिन्दू कैसे हो सकता है ?' डॉ. अम्बेडकर की यह सोच ठीक वैसी ही है जैसे किसी के हाथ-पैर में फोड़ा हो जाये तो उसका आप्रेशन कर उसको निकाल देने के बजाय उस आदमी को जान से ही मार दिया जांये !

२३. वेदों में जातिव्यवस्था का नामोनिशान तक नहीं है । फिर भी डॉ. अम्बेडकर ने वेदों की अकारण आलोचना की,उनको नष्ट करने की बात कही,उनके महत्त्व को अंगीकार नहीं किया । बौद्ध होकर भी उन्होंने ऐसा ही किया है । उन्होंने बौद्ध-शास्त्रों की और अपने गुरु की अवज्ञा की है,क्योंकि बौद्ध शास्त्रों में महात्मा बुद्ध ने वेदों और वेदज्ञों की प्रशंसा करते हुए धर्म में वेदों के महत्त्व को प्रतिपादित किया है । कुछ प्रमाण देखिए-

(अ) **"विद्वा च वेदेहि समेच्च धम्मम् ।**
न उच्चावचं गच्छति भूरिपञ्ञो ।" (सुत्तनिपात २९२)

अर्थात्-महात्मा बुद्ध कहते हैं-'जो विद्वान् वेदों से धर्म का ज्ञान प्राप्त करता है,वह कभी विचलित नहीं होता ।'

(आ) **"विद्वा च सो वेदगू नरो इध, भवाभवे संगं इमं विसज्जा ।**
सो वीतवण्हो अनिघो निरासो, अतारि सो जाति जरांति ब्रूमीति ॥"

(सुत्तनिपात १०६०)

अर्थात्-'वेद को जानने वाला विद्वान् इस संसार में जन्म और मृत्यु की आसक्ति का त्याग करके और इच्छा,तृष्णा तथा पाप से रहित होकर जन्म-मृत्यु से छूट जाता है ।' अन्य श्लोक द्रष्टव्य हैं-३२२,४५८,५०३,८४६,१०५९ आदि ।

२४. डॉ. अम्बेडकर की मनु-विरोध परम्परा में डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन द्वारा 'राष्ट्रीय कर्तव्य' के नाम से किया गया मनुस्मृति-विरोध केवल 'विरोध' के लिए ही है,जो अत्यन्त सतही है । उसमें न तर्क है,न सम्यक् विश्लेषण । अपव्याख्या और अपप्रस्तुति का आश्रय लेकर अच्छे को भी बुरा सिद्ध करने का प्रयास है । उन्हें जहां इस बात पर आक्रोश है कि मनु ने नारियों की निन्दा की है,तो इस बात पर भी दुःख है कि उन्हें "पूजार्ह = सम्मानयोग्य" क्यों कहा गया ! इसी को कहते हैं 'चित भी मेरी पट भी मेरी ।' उनकी स्थिति विरोधाभासी है । महात्मा गांधी के प्रशंसक हैं,किन्तु उनके निष्कर्षों को नहीं मानते । बौद्ध हैं,किन्तु बौद्ध साहित्य में वर्णित वेद-वेदज्ञ आदि के महत्त्व को स्वीकार नहीं करते । स्वयं को गर्व से अवैदिक = अहिन्दू घोषित करते रहे,किन्तु हिन्दुओं के शास्त्रों के तथाकथित उद्धार में और हिन्दुओं में पूज्य महापुरुषों मनु,राम आदि की निन्दा-आलोचना में लगे रहे ।

२५. मनुस्मृति-विरोधी सभी लेखकों में कुछ एकांगी और पूर्वाग्रहयुक्त बातें समानरूप से पायी जाती हैं। उन्होंने कर्मणा वर्णव्यवस्था को सिद्ध करने वाले आपत्तिरहित श्लोकों, जिनमें स्त्री-शूद्रों के लिए हितकर और सद्‌भावपूर्ण बाते हैं, जिन्हें कि पूर्वापर प्रसंग से सम्बद्ध होने के कारण मौलिक माना जाता है, को उद्धृत ही नहीं किया। केवल आपत्तिपूर्ण श्लोकों, जिन्हें कि प्रक्षिप्त माना जाता है, को उद्धृत करके निन्दा-आलोचना की है। उन्होंने इस शंका का समाधान नहीं किया है कि एक ही पुस्तक में, एक ही प्रसंग में स्पष्टतः परस्पर विरोधी कथन क्यों पाये जाते हैं ? और आपने दो कथनों में से केवल आपत्तिपूर्ण कथन को ही क्यों ग्रहण किया ? दूसरों की उपेक्षा क्यों की ? यदि वे लेखक इस प्रश्न पर चर्चा करते तो उनकी आपत्तियों का उत्तर उन्हें स्वयं मिल जाता। न आक्रोश में आने का अवसर आता, न विरोध का, अपितु बहुत-सी भ्रान्तियों से बच जाते।

(ख) मनुस्मृति में शूद्रों की स्थिति

आइये, अब विचार करते हैं मनुस्मृति के सबसे अधिक चर्चित और विवादास्पद शूद्र सम्बन्धी विषय पर। मनुस्मृति के अन्तःसाक्ष्यों पर दृष्टिपात करने पर हमें कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं आधारभूत तथ्य उपलब्ध होते हैं जो शूद्रों के विषय में मनु की भावनाओं का संकेत देते हैं। वे इस प्रकार हैं-

१. **दलितों-पिछड़ों को शूद्र नहीं कहा**-आजकल की दलित, पिछड़ी और जनजाति कही जाने वाली जातियों को मनुस्मृति में कहीं 'शूद्र' नहीं कहा गया है। मनु की वर्णव्यवस्था है, अतः सभी व्यक्तियों के वर्णों का निश्चय गुण-कर्म-योग्यता के आधार पर किया गया है, जाति के आधार पर नहीं। यही कारण है कि शूद्र वर्ण में किसी जाति की गणना करके यह नहीं कहा है कि अमुक-अमुक जातियां 'शूद्र' हैं। परवर्ती समाज और व्यवस्थाकारों ने समय-समय पर शूद्र संज्ञा देकर कुछ वर्णों को शूद्रवर्ग में सम्मिलित कर दिया। कुछ लोग भ्रान्तिवश इसकी जिम्मेदारी मनु पर थोंप रहे हैं। विकृत व्यवस्थाओं का दोषी तो है परवर्ती समाज, किन्तु उसका दण्ड मनु को दिया जा रहा है। न्याय की मांग करने वाले दलित प्रतिनिधियों का यह कैसा न्याय है ?

२. **मनुकृत शूद्रों की परिभाषा वर्तमान शूद्रों पर लागू नहीं होती**—मनु द्वारा दी गयी शूद्र की परिभाषा भी आज की दलित और पिछड़ी जातियों पर लागू नहीं होती। मनुकृत शूद्र की परिभाषा है—जिनका ब्रह्मजन्म = विद्याजन्म रूप दूसरा जन्म होता है, वे 'द्विजाति' ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं। जिसका ब्रह्मजन्म नहीं होता वह 'एकजाति' रहनेवाला शूद्र है। अर्थात् जो बालक निर्धारित समय पर गुरु के पास जाकर संस्कारपूर्वक वेदाध्ययन, विद्याध्ययन और अपने वर्ण की शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करता है, वह उसका 'विद्याजन्म' नामक दूसरा जन्म है, जिसे शास्त्रों में 'ब्रह्मजन्म' कहा गया है। जो जानबूझकर, मन्दबुद्धि होने के कारण अथवा अयोग्य होने के कारण 'विद्याध्ययन' और उच्च तीन द्विज वर्णों में से किसी भी वर्ण की शिक्षा-दीक्षा नहीं प्राप्त करता, वह अशिक्षित व्यक्ति

'एकजाति = एक जन्म वाला' अर्थात् शूद्र कहलाता है। इसके अतिरिक्त उच्च वर्णों में दीक्षित होकर जो निर्धारित कर्मों को नहीं करता, वह भी शूद्र हो जाता है (मनु० २.१२६,१६९,१७०,१७२; १०.४ आदि)। इस विषयक एक-दो प्रमाण द्रष्टव्य हैं-

(अ) **ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः, त्रयो वर्णाः द्विजातयः।**
चतुर्थः एकजातिस्तु, शूद्रः नास्ति तु पंचमः ॥ (मनु० १०.४)

अर्थात्-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इन तीन वर्णों को द्विजाति कहते हैं, क्योंकि इनका दूसरा विद्याजन्म होता है। चौथा वर्ण एकजाति = केवल माता-पिता से ही जन्म प्राप्त करने वाला और विद्याजन्म न प्राप्त करने वाला, शूद्र है। इन चारों वर्णों के अतिरिक्त कोई वर्ण नहीं है।

(आ) **शूद्रेण हि समस्तावद् यावद् वेदे न जायते।** (२.१७२)

अर्थात्-जब तक व्यक्ति का ब्रह्मजन्म = वेदाध्ययन रूप जन्म नहीं होता, तब तक वह शूद्र के समान ही होता है।

(इ) **न वेत्ति अभिवादस्य....यथा शूद्रस्तथैव सः।** (२.१२६)

अर्थात्-जो अभिवादन विधि का ज्ञान नहीं रखता, वह शूद्र ही है।

(ई) **"प्रत्यवायेन शूद्रताम्"** (४.२४५)

अर्थात्-ब्राह्मण, हीन लोगों के संग और आचरण से शूद्र हो जाता है।

बाद तक भी शूद्र की यही परिभाषा रही है-

(उ) **जन्मना जायते शूद्रः, संस्काराद् द्विज उच्यते।** (स्कन्दपुराण)

अर्थात्-प्रत्येक व्यक्ति जन्म से शूद्र होता है, उपनयन संस्कार में दीक्षित होकर ही द्विज बनता है।

मनु की यह व्यवस्था अब भी बालिद्वीप में प्रचलित है। यहां 'द्विजाति' और 'एकजाति' संज्ञाओं का ही प्रयोग होता है। शूद्र को अस्पृश्य नहीं माना जाता।

३. **शूद्र अस्पृश्य नहीं**-अनेक श्लोकों से ज्ञात होता है कि शूद्रों के प्रति मनु की मानवीय सद्भावना थी और वे उन्हें अस्पृश्य, निन्दित अथवा घृणित नहीं मानते थे। मनु ने शूद्रों के लिए उत्तम, उत्कृष्ट, शुचि जैसे विशेषणों का प्रयोग किया है, ऐसा विशेष्य व्यक्ति कभी अस्पृश्य या घृणित नहीं माना जा सकता (९.३३५)। शूद्रों को द्विजाति वर्णों के घरों में पाचन, सेवा आदि श्रमकार्य करने का निर्देश दिया है (१.९१; ९.३३४-३३५)। किसी द्विज के यहां यदि कोई शूद्र अतिथिरूप में आ जाये तो उसे भोजन कराने का आदेश है (३.११२)। द्विजों को आदेश है कि अपने भृत्यों को, जो कि शूद्र होते थे, पहले भोजन कराने के बाद, भोजन करें (३.११६)। क्या आज के वर्णरहित सभ्य

समाज में भृत्यों को पहले भोजन कराया जाता है ? और उनका इतना ध्यान रखा जाता है ? कितना मानवीय, सम्मान और कृपापूर्ण दृष्टिकोण था मनु का !

वैदिक वर्णव्यवस्था में परमात्मापुरुष अथवा ब्रह्मा के मुख, बाहु, जंघा, पैर से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की आलंकारिक उत्पत्ति बतलायी है (१.३१)। इससे तीन निष्कर्ष निकलते हैं। एक, चारों वर्णों के व्यक्ति परमात्मा की एक जैसी सन्तानें हैं। दूसरा, एक जैसी सन्तानों में कोई अस्पृश्य और घृणित नहीं होता। तीसरा, एक ही शरीर का अंग 'पैर' अस्पृश्य या घृणित नहीं होता है। ऐसे श्लोकों के रहते कोई तटस्थ व्यक्ति क्या यह कह सकता है कि मनु शूद्रों को अस्पृश्य और घृणित मानते थे ?

४. **शूद्र को सम्मान व्यवस्था में छूट**-मनु ने सम्मान के विषय में शूद्रों को विशेष छूट दी है। मनुविहित सम्मान-व्यवस्था में प्रथम तीन वर्णों में अधिक गुणों के आधार पर अधिक सम्मान देने का कथन है जिनमें विद्यावान् सबसे अधिक सम्मान्य है (२.१११,११२,१३०)। किन्तु शूद्र के प्रति अधिक सद्भाव प्रदर्शित करते हुए उन्होंने विशेष विधान किया है कि द्विज वर्ण के व्यक्ति वृद्ध शूद्र को पहले सम्मान दें, जबकि शूद्र अशिक्षित होता है। यह सम्मान पहले तीन वर्णों में किसी को नहीं दिया गया है-

"मानार्हः शूद्रो ऽपि दशमीं गतः" (२.१३७)

अर्थात्-वृद्ध शूद्र को सभी द्विज पहले सम्मान दें। शेष तीन वर्णों में अधिक गुणी पहले सम्मान का पात्र है।

५. **शूद्र को धर्मपालन की स्वतन्त्रता-"न धर्मात् प्रतिषेधनम्"** (१०.१२६) अर्थात्-'शूद्रों को धार्मिक कार्य करने का निषेध नहीं है' यह कहकर मनु ने शूद्र को धर्मपालन की स्वतन्त्रता दी है। इस तथ्य का ज्ञान उस श्लोक से भी होता है जिसमें मनु ने कहा है कि 'शूद्र से भी उत्तम धर्म को ग्रहण कर लेना चाहिए' (२.२१३)। वेदों में शूद्रों को स्पष्टतः यज्ञ आदि करने और वेदशास्त्र पढ़ने का अधिकार दिया है—

(अ) **यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।**
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय॥ (यजुर्वेद २६.२)

अर्थात्-मैंने इस कल्याणकारिणी वेद वाणी का उपदेश सभी मनुष्यों-ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, वैश्य, स्वाश्रित स्त्री-भृत्य आदि और अतिशूद्र आदि के लिए किया है।

(आ) **यज्ञियासः पञ्चजनाः मम होत्रं जुषध्वम्।** (ऋग्० १०.५३.४)
"पञ्चजनाः = चत्वारो वर्णाः, निषादः पञ्चमः।" (निरुक्त ३.८)

अर्थात्-'यज्ञ करने के पात्र पांच प्रकार के मनुष्य अग्निहोत्र किया करें।' चार वर्ण और पांचवां निषाद, ये पञ्चजन कहलाते हैं।

मनु की प्रतिज्ञा है कि उनकी मनुस्मृति वेदानुकूल है, अतः वेदाधारित होने के कारण मनु की भी वही मान्यताएं हैं। यही कारण है कि उपनयन प्रसंग में कहीं भी शूद्र के उपनयन का निषेध नहीं किया है, क्योंकि शूद्र तो तब कहाता है, जब कोई उपनयन नहीं कराता।

६. **दण्डव्यवस्था में शूद्र को सबसे कम दण्ड**-पाठकवृन्द! आइये, अब मनुविहित दण्डव्यवस्था पर दृष्टिपात करते हैं। यह कहना नितान्त अनुचित है कि मनु ने शूद्रों के लिए कठोर दण्डों का विधान किया है और ब्राह्मणों को विशेषाधिकार एवं विशेष सुविधाएं प्रदान की हैं। मनु की दण्डव्यवस्था के मानदण्ड हैं-गुण-दोष, और आधारभूत तत्व हैं-बौद्धिक स्तर, सामाजिक स्तर, पद, अपराध का प्रभाव। मनु की दण्डव्यवस्था यथायोग्य दण्डव्यवस्था है, जो मनोवैज्ञानिक है। यदि मनु वर्णों में गुण-कर्म-योग्यता के आधार पर उच्च वर्णों को अधिक सम्मान और सामाजिक स्तर प्रदान करते हैं तो अपराध करने पर उतना ही अधिक दण्ड भी देते हैं। इस प्रकार मनु की यथायोग्य दण्ड व्यवस्था में शूद्र को सबसे कम दण्ड है, और ब्राह्मण को सबसे अधिक; राजा को उससे भी अधिक। मनु की यह सर्वसामान्य दण्डव्यवस्था है, जो सभी दण्डस्थानों पर लागू होती है-

अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्विषम्
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत् क्षत्रियस्य च॥
ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वाऽपि शतं भवेत्।
द्विगुणा वा चतुःषष्टिः, तद्दोषगुणविद्धि सः॥ (८.३३७-३३८)

अर्थात्-किसी चोरी आदि के अपराध में शूद्र को आठ गुणा दण्ड दिया जाता है तो वैश्य को सोलहगुणा, क्षत्रिय को बत्तीसगुणा, ब्राह्मण को चौंसठगुणा, अपितु उसे सौगुणा अथवा एक सौ अट्ठाईसगुणा दण्ड करना चाहिए क्योंकि उत्तरोत्तर वर्ण के व्यक्ति अपराध के गुण-दोषों और उनके परिणामों, प्रभावों आदि को भलीभांति समझने वाले हैं।

इसके साथ ही मनु ने राजा को आदेश दिया है कि उक्त दण्ड से किसी को छूट नहीं दी जानी है, चाहे वह आचार्य, पुरोहित और राजा के पिता-माता ही क्यों न हों। राजा दण्ड दिये बिना मित्र को भी न छोड़े और कोई समृद्ध व्यक्ति शारीरिक अपराधदण्ड के बदले में विशाल धनराशि देकर छूटना चाहे तो उसे भी न छोड़े (८.३३५, ३४७)

देखिए, मनु की दण्डव्यवस्था कितनी मनोवैज्ञानिक, न्यायपूर्ण, व्यावहारिक और श्रेष्ठप्रभावी है। इसकी तुलना आज की दण्डव्यवस्था से करके देखिए, दोनों का अन्तर स्पष्ट हो

जायेगा। आज की दण्डव्यवस्था का नारा है-'कानून की दृष्टि में सब समान हैं।' पहला विरोध यही हुआ कि पदस्तर और सामाजिक स्तर के अनुसार सम्मान व्यवस्था तो पृथक्-पृथक् हैं और दण्ड एक जैसा! दूसरा, यथायोग्य दण्ड नहीं। इसे यों समझिए कि खेत चर जाने पर मेमने को भी एक डण्डा लगेगा, भैंसे, हाथी को भी। इसका प्रभाव क्या होगा? बेचारा मेमना डण्डे के प्रहार से मिमियाने लगेगा, भैंसे में कुछ हलचल होगी, हाथी को अनुभूति ही नहीं होगी। क्या यह वास्तव में समान दण्ड हुआ? समान दण्ड तो वह है, जो लोकव्यवहार में प्रचलित है। भैंसे को लाठी से, हाथी को अंकुश से और शेर को हण्टर से वश में किया जाता है। दूसरा उदाहरण लीजिए-एक अत्यन्त गरीब एक हजार के दण्ड को कर्ज लेकर चुका पायेगा, मध्यमवर्गीय थोड़ा कष्ट अनुभव करके और समृद्ध-सम्पन्न जूती की नोक पर रख कर देगा। इसी अमनोवैज्ञानिक दण्डव्यवस्था का परिणाम है कि दण्ड की पतली रस्सी में आज गरीब तो फंस जाते हैं, धन-पद-सत्ता-सम्पन्न शक्तिशाली लोग उस रस्सी को तुड़ा कर निकल भागते हैं। आंकड़े इकट्ठे करके देख लीजिए, स्वतन्त्रता के बाद कितने गरीबों को सजा हुई है, और कितने धन-पद-सत्ता-सम्पन्न लोगों को! आर्थिक अपराधों में समृद्ध लोग अर्थदण्ड भरते रहते हैं, अपराध करते रहते हैं। मनु की यथायोग्य दण्ड-व्यवस्था में ऐसा असन्तुलन नहीं है।

मनु की दण्डव्यवस्था अपराध की प्रकृति पर निर्भर है। वे गम्भीर अपराध में यदि कठोर दण्ड का विधान करते हैं तो चारों वर्णों को ही, और यदि सामान्य अपराध में सामान्य दण्ड का विधान करते हैं, तो वह भी चारों वर्णों के लिए सामान्य होता है। शूद्रों के लिए जो कठोर दण्डों का विधान मिलता है वह प्रक्षिप्त श्लोकों में है। उक्त दण्डनीति के विरुद्ध जो श्लोक मिलते हैं, वे मनुरचित नहीं हैं।

७. **शूद्र दास नहीं है**-शूद्र से दासता कराने अथवा जीविका न देने का कथन मनु के निर्देशों के विरुद्ध है। मनु ने सेवकों, भृत्यों का वेतन, स्थान और पद के अनुसार नियत करने का आदेश राजा को दिया है और यह सुनिश्चित किया है कि उनका वेतन अनावश्यक रूप से न काटा जाये (७.१२५-१२६-;८.२१६)।

८. **शूद्र सवर्ण हैं**-वर्तमान मनुस्मृति को उठाकर देख लीजिए, उनकी ऐसी कितनी ही व्यवस्थाएं हैं, जिन्हें परवर्ती समाज ने अपने ढंग से बदल लिया है। मनु ने शूद्र सहित चारों वर्णों को सवर्ण माना है, चारों से भिन्न को असवर्ण (१०.४, ४५), किन्तु परवर्ती समाज शूद्र को असवर्ण कहने लग गया। मनु ने शिल्प, कारीगरी आदि के कार्य करने वाले लोगों को वैश्य वर्ण के अन्तर्गत माना है (३.६४;९.३२९;१०.९९;१०.१२०), किन्तु परवर्ती समाज ने उन्हें भी शूद्रकोटि में ला खड़ा कर दिया। दूसरी ओर, मनु ने कृषि, पशुपालन को वैश्यों का कार्य माना है (१.९०), किन्तु सदियों

सें ब्राह्मण और क्षत्रिय भी कृ।ष-पशुपालन कर रह हैं,उन्हें वैश्य घोषित नहीं किया। इनको मनु की व्यवस्था कैसे माना जा सकता है ?

इस प्रकार मनु की व्यवस्थाएं न्यायपूर्ण हैं। उन्होंने न शूद्र और न किसी अन्य वर्ण के साथ अन्याय या पक्षपात किथा है।

(ग) मनुस्मृति में नारियों की स्थिति

मनुस्मृति के अन्तःसाक्ष्य कहते हैं कि मनु की जो स्त्री-विरोधी छवि प्रस्तुत की जा रही है, वह निराधार एवं तथ्यों के विपरीत है। मनु ने मनुस्मृति में स्त्रियों से सम्बन्धित जो व्यवस्थाएं दी हैं वे उनके सम्मान, सुरक्षा, समानता, सद्‌भाव और न्याय की भावना से प्रेरित हैं। कुछ प्रमाण प्रस्तुत हैं-

१. **नारियों को सर्वोच्च महत्त्व**-महर्षि मनु संसार के वह प्रथम महापुरुष हैं,जिन्होंने नारी के विषय में सर्वप्रथम ऐसा सर्वोच्च आदर्श उद्घोष दिया है,जो नारी की गरिमा,महिमा और सम्मान को असाधारण ऊंचाई प्रदान करता है-

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैताः तु न पूज्यन्ते सर्वाः तत्राफलाः क्रियाः ॥ (३.५६)

इसका सही अर्थ है-'जिस परिवार में नारियों का आदर-सम्मान होता है, वहां देवता = दिव्य गुण, कर्म, स्वभाव, सन्तान, दिव्य लाभ आदि प्राप्त होते हैं और जहां इनका आदर-सम्मान नहीं होता, वहां उनकी सब क्रियाएं निष्फल हो जाती हैं।'

स्त्रियों के प्रति प्रयुक्त सम्मानजनक एवं सुन्दर विशेषणों से बढ़कर, नारियों के प्रति मनु की भावना का बोध कराने वाले प्रमाण और कोई नहीं हो सकते। वे कहते हैं कि नारियां घर का भाग्योदय करने वाली, आदर के योग्य, घर की ज्योति, गृहशोभा, गृहलक्ष्मी, गृहसंचालिका एवं गृहस्वामिनी, घर का स्वर्ग, संसारयात्रा की आधार हैं (९.११, २६, २८; ५.१५०)। कल्याण चाहने वाले परिवारजनों को स्त्रियों का आदर-सत्कार करना चाहिये, अनादर से शोकग्रस्त रहने वाली स्त्रियों के कारण घर और कुल नष्ट हो जाते हैं। स्त्री की प्रसन्नता में ही कुल की वास्तविक प्रसन्नता है (३.५५-६२)। इसलिए वे गृहस्थों को उपदेश देते हैं कि परस्पर संतुष्ट रहें एक दूसरे के विपरीत आचरण न करें और ऐसा कोई कार्य न करें जिससे एक-दूसरे से वियुक्त होने की स्थिति आ जाये (९.१०१-१०२)। मनु की भावनाओं को व्यक्त करने के लिए एक श्लोक ही पर्याप्त है-

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हाः गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषो ऽस्ति कश्चन ॥ (मनु० ९.२६)

अर्थात्-सन्तान उत्पत्ति के लिए घर का भाग्योदय करने वाली, आदर-सम्मान के योग्य, गृहज्योति होती हैं स्त्रियां। शोभा-लक्ष्मी और स्त्री में कोई अन्तर नहीं है, वे घर की प्रत्यक्ष शोभा हैं।

२. **पुत्र-पुत्री एक समान**-मनुमत से अनभिज्ञ पाठकों को यह जानकर सुखद आश्चर्य होगा कि मनु ही सबसे पहले वह संविधान निर्माता हैं जिन्होंने पुत्र-पुत्री की समानता को घोषित करके उसे वैधानिक रूप दिया है-

"पुत्रेण दुहिता समा" (मनु० ९.१३०)

अर्थात्-'पुत्री पुत्र के समान होती है। वह आत्मारूप है, अतः वह पैतृकसम्पत्ति की अधिकारिणी है।'

३. **पुत्र-पुत्री को पैतृक सम्पत्ति में समान अधिकार**-मनु ने पैतृक सम्पत्ति में पुत्र-पुत्री को समान अधिकारी माना है। उनका यह मत मनुस्मृति के ९.१३०,१९२ में वर्णित है। इसे निरुक्त में इस प्रकार उद्धृत किया गया है-

अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः।
मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥ (३.१.४)

अर्थात्-सृष्टि के प्रारम्भ में स्वायम्भुव मनु ने यह विधान किया है कि दायभाग = पैतृक सम्पत्ति में पुत्र-पुत्री का समान अधिकार होता है। मातृधन में केवल कन्याओं का अधिकार विहित करके मनु ने परिवार में कन्याओं के महत्त्व में अभिवृद्धि की है (९.१३१)।

४. **स्त्रियों के धन की सुरक्षा के विशेष निर्देश**—स्त्रियों को अबला समझकर कोई भी, चाहे वह बन्धु-बान्धव ही क्यों न हों, यदि स्त्रियों के धन पर कब्जा कर लें, तो उन्हें चोर सदृश दण्ड से दण्डित करने का आदेश मनु ने दिया है (९.२१२;३.५२;८.२;८-२९)।

५. **नारियों के प्रति किये अपराधों में कठोर दण्ड**—स्त्रियों की सुरक्षा के दृष्टिगत नारियों की हत्या और उनका अपहरण करने वालों के लिए मृत्युदण्ड का विधान करके तथा बलात्कारियों के लिए यातनापूर्ण दण्ड देने के बाद देश निकाला का आदेश देकर मनु ने नारियों की सुरक्षा को सुनिश्चित बनाने का यत्न किया है (८.३२३;९.२३२;८.३५२)। नारियों के जीवन में आने वाली प्रत्येक छोटी-बड़ी कठिनाई का ध्यान रखते हुए मनु ने उनके निराकरण हेतु स्पष्ट निर्देश दिये हैं। पुरुषों को निर्देश है कि वे माता, पत्नी और पुत्री के साथ झगड़ा न करें (४.१८०), इन पर मिथ्या दोषारोपण करने वालों, इनको निर्दोष होते हुए त्यागने वालों, पत्नी के प्रति वैवाहिक दायित्व न निभाने वालों के लिए दण्ड का विधान है (८.२७५,३८९;९.४)।

६. **वैवाहिक स्वतन्त्रता एवं अधिकार**—विवाह के विषय में मनु के आदर्श विचार हैं। मनु ने कन्याओं को योग्य पति का स्वयं वरण करने का निर्देश देकर स्वयम्वर विवाह का अधिकार एवं उसकी स्वतन्त्रता दी है (९.९०-९१)। विधवा को पुनर्विवाह का भी अधिकार दिया है, साथ ही सन्तानप्राप्ति के लिए नियोग की भी छूट है (९.१७६, ९.५६-६३)। उन्होंने विवाह को कन्याओं के आदर-स्नेह का प्रतीक बताया है, अतः विवाह में किसी भी प्रकार के लेन-देन को अनुचित बताते हुए बल देकर उसका निषेध किया है (३.५१-५४)। स्त्रियों के सुखी-जीवन की कामना से उनका सुझाव है कि जीवनपर्यन्त अविवाहित रहना श्रेयस्कर है, किन्तु गुणहीन, दुष्ट पुरुष से विवाह नहीं करना चाहिए (९.८९)।

७. **सहभागिता तथा धर्मानुष्टान में अपरिहार्यता**—विश्व के सभी धर्मों में से केवल वैदिक धर्म में और सभी देशों में से भारतवर्ष में स्त्रियों को पुरुष के कार्यों में जो सहभागिता प्राप्त है वह अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलती। यहां का कोई भी धार्मिक, सामाजिक या पारिवारिक आयोजन-अनुष्ठान स्त्री को साथ लिए बिना सम्पन्न नहीं होता। यही मनु की मान्यता है। इसलिए धर्मानुष्ठान के प्रबन्ध का दायित्व स्त्री को सौंपा है और उसकी सहभागिता से ही प्रत्येक अनुष्ठान करने का निर्देश दिया है (९.११, २८, ९६)। वैदिक काल में स्त्रियों को वेदाध्ययन, यज्ञोपवीत, यज्ञ आदि के सभी अधिकार प्राप्त थे। वे ब्रह्मा के पद को सुशोभित करती थीं। उच्च शिक्षा प्राप्त करके मन्त्रद्रष्ट्री ऋषिकाएं बनती थी। वेदों को धर्म में परम प्रमाण मानने वाले ऋषि मनु वेदानुसार स्त्रियों के सभी धार्मिक अधिकारों तथा उच्च शिक्षा के समर्थक हैं। तभी उन्होंने स्त्रियों के अनुष्ठान मन्त्रपूर्वक करने और धर्मकार्यों का अनुष्ठान स्त्रियों के अधीन घोषित किया है (२.४; ३.२८)।

८. **स्त्रियों को प्राथमिकता**-'लेडीज फस्ट' की सभ्यता के प्रशंसकों को यह पढ़कर और अधिक प्रसन्नता होनी चाहिए कि मनु ने सभी को यह निर्देश दिया है कि 'स्त्रियों के लिए पहले रास्ता छोड़ दें। नवविवाहिताओं, कुमारियों, रोगिणी, गर्भिणी, वृद्धा आदि स्त्रियों को पहले भोजन करा के फिर पति-पत्नी को साथ भोजन करने का कथन है (२.१३८; ३.११४, ११६)। मनु के ये सब विधान स्त्रियों के प्रति सम्मान और स्नेह के द्योतक हैं।'

९. **स्त्रियों की अमर्यादित स्वतन्त्रता के पक्षधर नहीं**-यहां प्रसंगवश यह स्पष्ट कर देना उपयोगी रहेगा कि मनु गुणों के प्रशंसक हैं और अवगुणों के निन्दक। गुणियों को सम्मानदाता हैं, अवगुणियों को दण्डदाता। यदि उन्होंने गुणवती स्त्रियों को पर्याप्त सम्मान दिया है, तो अवगुणवती स्त्रियों की निन्दा की है और दण्ड का विधान किया है। मनु की एक विशेषता और है, वह यह कि वे नारी की असुरक्षित तथा अमर्यादित स्वतन्त्रता के पक्षधर नहीं हैं और न उन बातों का समर्थन करते हें जो परिणाम में अहितकर हैं। इसीलिए उन्होंने स्त्रियों को चेतावनी देते हुए सचेत किया है कि वे स्वयं को पिता, पति, पुत्र आदि की सुरक्षा से अलग न करें, क्योंकि एकाकी रहने से दो कुलों की निन्दा

होने की आशंका रहती है (५.१४९; ९.५-६)। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि मनु स्त्रियों की स्वतन्त्रता के विरोधी हैं। इसका निहितार्थ यह है कि नारी की सर्वप्रथमं सामाजिक आवश्यकता है-सुरक्षा की। वह सुरक्षा उसे, चाहे शासन-कानून प्रदान करे अथवा कोई पुरुष या स्वयं का सामर्थ्य। भोगवादी आपराधिक प्रवृत्तियां उसके स्वयं के सामर्थ्य को सफल नहीं होने देती। उदाहरणों से पता चलता है कि शस्त्रधारिणी डाकू स्त्रियों तक को भी पुरुष-सुरक्षा की आवश्यकता रही है। मनु के उक्त कथन को आज की राजनीतिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में देखना सही नहीं है। आज देश में एक शासन है और कानून उसका रक्षक है। फिर भी हजारों नारियां अपराधों की शिकार होकर जीवन की बर्बादी की राह पर चलने को विवश हैं। प्रतिदिन बलात्कार, नारी-हत्या जैसे जघन्य अपराधों की हजारों घटनाएं होती रहती हैं। जब राजतन्त्र में उथल-पुथल होती रहती है, कानून शिथिल पड़ जाते हैं, तब क्या परिणाम होगा, उस स्थिति में मनु के वचनों के महत्त्व को आंककर देखना चाहिये। तब यह मानना पड़ेगा कि वे शतप्रतिशत सही हैं।

उपुर्यक्त विश्लेषण से हमें यह स्पष्ट होता है कि मनुस्मृति की व्यवस्थाएं स्त्री-शूद्रविरोधी नहीं हैं, वे न्यायपूर्ण और पक्षपातरहित हैं। मनु ने कुछ भी ऐसा नहीं कहा जो निन्दा अथवा आपत्ति के योग्य हो।

मनुस्मृति में प्रक्षेप

अब प्रश्न उठता है, कि ठीक है, मनुस्मृति में उत्तम विधानों के श्लोक हैं, किन्तु मनु-विरोधी लेखकों द्वारा प्रस्तुत श्लोक भी तो मनुस्मृति के ही हैं, जो सर्वथा आपत्ति योग्य हैं। इस प्रकार बड़ी उलझनभरी स्थिति ज्ञात होती है मनुस्मृति की। उसमें एक ही साथ न्यायपूर्ण श्रेष्ठ विधान भी हैं और अन्यायपूर्ण निन्द्य विधान भी! लेकिन क्या मौलिक रूप से यह स्थिति संभव मानी जा सकती है? जब एक प्रबुद्ध सामान्य लेखक की रचना में भी इस प्रकार के परस्पर विरोध नहीं मिलते तो एक धर्मवेत्ता, विधिवेत्ता ऋषि के धर्म और विधिशास्त्र में ऐसे विरोध कैसे हो गये? इसका सीधा-स्पष्ट और निर्विवाद उत्तर है कि जो न्यायपूर्ण, श्रेष्ठ और गुण-कर्म-योग्यता पर आधारित विधान हैं, वे मनु के मौलिक श्लोक हैं, जो इनके विरुद्ध अन्याय और पक्षपातपूर्ण हैं, वे प्रक्षिप्त हैं अर्थात् समय-समय पर बाद के लोगों ने रचकर मनुस्मृति में मिला दिये हैं। इस उत्तर की पुष्टि मनुस्मृति पर आधारित मादडण्डों से ही हो जाती है। मौलिक श्लोक पूर्वापर प्रसंगों से, विषयों से जुड़े हुए हैं और गुण-कर्म-योग्यता के सिद्धान्त पर आधारित गम्भीर शैली में हैं, जबकि प्रक्षिप्त श्लोक प्रसंग और विषयविरुद्ध तथा भिन्न शैली के हैं। इन आधारों के अनुसार अब हम कह सकते हैं कि इस लेख में उद्धृत श्लोक मौलिक हैं और इनकी भावना के विपरीत श्लोक प्रक्षिप्त हैं, जिन्हें कि मनु-विरोधी

लेखकों ने विरोध का आधार बनाया है । संक्षेप में,प्रस्तुत विषय के मौलिक और प्रक्षिप्त श्लोक इस प्रकार हैं-

१. मनु की व्यवस्था 'वैदिक वर्णव्यवस्था' है (डॉ. अम्बेडकर ने भी इसे स्वीकार किया है), अत: गुण-कर्म-योग्यता के सिद्धान्त पर आधारित जो श्लोक हैं,वे मौलिक हैं । इनके विरुद्ध जन्मना जातिविधायक और जन्म के आधार पर पक्षपात का विधान करने वाले श्लोक प्रक्षिप्त हैं ।

मनु के समय जातियां नहीं बनी थीं । यही कारण है कि मनु ने वर्णों में जातियों की गणना नहीं दर्शायी है । इस शैली और सिद्धान्त के आधार पर वर्णसंस्कारों से सम्बन्धित श्लोक भी प्रक्षिप्त हैं ।

२. इस लेख में उद्धृत मनु की यथायोग्य दण्डव्यवस्था,जो कि उनका 'जनरल कानून' है, मौलिक है; इसके विरुद्ध पक्षपातपूर्ण कठोर दण्डव्यवस्था विधायक श्लोक प्रक्षिप्त हैं ।

३. इस लेख में उद्धृत शूद्र की परिभाषा, शूद्रों के प्रति सद्भाव, शूद्रों के धर्मपालन, वर्णपरिवर्तन आदि के विधायक श्लोक मौलिक हैं;उनके विपरीत जन्मना शूद्रनिर्धारक,स्पृश्यापृश्य, ऊंच-नीच,अधिकारों के शोषण आदि के विधायक श्लोक प्रक्षिप्त हैं ।

४. इस लेख में उद्धृत नारियों के सम्मान,स्वतन्त्रता,समानता,शिक्षा विधायक श्लोक मौलिक हैं,इसके विपरीत प्रक्षिप्त हैं ।

इन श्लोकों की मौलिकता और प्रक्षिप्तता को यदि पाठक, और अधिक गम्भीरता तथा विस्तार से जानना चाहें,तो वे **'आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४५५-खारी बावली, दिल्ली' से प्रकाशित मनुस्मृति (सम्पूर्ण)** का अध्ययन कर सकते हैं । इसमें कृतित्व पर आधारित सर्वसामान्य मानदण्डों के आधार पर मौलिक और प्रक्षिप्त श्लोकों को पृथक् दर्शा कर उन पर युक्ति-प्रमाण सहित समीक्षा दी गयी है । मनुस्मृति की मौलिक विषयवस्तु की जानकारी देने, प्रक्षिप्त श्लोकों को कारणपूर्वक समझाने और मनुस्मृति सम्बन्धी भ्रान्तियों के निराकरण के दृष्टिकोण से यह संस्करण पर्याप्त उपयोगी सिद्ध होगा । प्रक्षिप्तों पर यह नवीनतम शोधकार्य है ।

यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्रक्षिप्त श्लोक अब विवाद नहीं रह गये हैं, अपितु एक निर्णय के रूप में मान्य हो गये हैं । भारतीय साहित्य की यह एक ऐतिहासिक सच्चाई है,और इसके लिखित प्रमाण भी उपलब्ध हैं कि अधिकांश प्राचीन संस्कृत साहित्य में समय-समय पर प्रक्षेप होते रहे हैं । महाभारत के उल्लेख के अनुसार,दस हजार श्लोकों का काव्य बढ़ते-बढ़ते एक लाख श्लोकों का संग्रह बन गया । एक हजार वर्ष पुरानी हस्तलिखित रामायण से जो नेपाल के अभिलेखागार में सुरक्षित है, आज की रामायण में सैंकड़ों श्लोक अधिक पाये जाते हैं । यही स्थिति मनुस्मृति की है, अपितु इसमें अधिक परिवर्तन-परिवर्धन-प्रक्षेप हुए हैं । कारण,इसका मनुष्य

के दैनिक आचार-व्यवहार से अधिक सम्बन्ध था, अतः स्वार्थवश उतनी ही अधिक छेड़छाड़ की गयी। मनुस्मृति में हुए प्रक्षेपों के विषय में सभी वर्गों के विद्वान् एकमत हैं। इसकी टीकाएं इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। बाद-बाद की टीका में अधिक श्लोक पाये जाते हैं। मेधातिथि (९ वीं शताब्दी) की तुलना में कुल्लूकभट्ट (१२ वीं शताब्दी) की टीका में एक सौ सत्तर श्लोक अधिक हैं। वे तब तक घुल-मिल नहीं पाये थे, अतः बृहत् कोष्ठक में दिये गये हैं। अन्य टीकाओं में भी श्लोक संख्या में अन्तर है।

- अंग्रेज शोधकर्ता वूलर, जे. जौली, कीथ, मैकडानल और इन्साइक्लोपीडिया (अमेरिका) के लेखक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि मनुस्मृति में प्रक्षेप होते रहे हैं।
- आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने प्रक्षेप रहित मनुस्मृति को प्रमाण माना है। उन्होंने कुछ प्रक्षिप्त श्लोकों को छांटा है और छांटने की प्रेरणा दी है।
- महात्मा गांधी ने अपनी 'वर्ण व्यवस्था' नामक पुस्तक में स्वीकार किया है कि मनुस्मृति में पायी जाने वाली आपत्तिजनक बातें बाद में की गयी मिलावटें हैं। डॉ. राधाकृष्णन्, रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि राष्ट्रनेता एवं विद्वान् भी यही मानते हैं।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि मनु एवं मनुस्मृति को मौलिक रूप में समझा जाये और प्रक्षिप्त श्लोकों के आधार पर किये जाने विरोध का परित्याग किया जाये। मनु एवं मनुस्मृति गर्व करने योग्य हैं, निन्दा करने योग्य नहीं। भ्रान्तिवश हमें अपनी अमूल्य एवं महत्त्वपूर्ण धरोहर को निहित स्वार्थमयी राजनीति में घसीटकर उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिये।